इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD - 11

हिन्दी कहानी

हिन्दी कहानी

इग्नू
जन जन का
विश्वविद्यालय

इन्दिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD-11
हिंदी कहानी

खंड

4

इकाई 13

एक जीता-जागता व्यक्ति : विश्लेषण और मूल्यांकन 5

इकाई 14

सुख : विश्लेषण और मूल्यांकन 22

इकाई 15

हरी बिन्दी : विश्लेषण और मूल्यांकन 34

इकाई 16

बोलने वाली औरत : विश्लेषण और मूल्यांकन 40

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. नित्यानंद तिवारी
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रो. राजेन्द्र कुमार
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. ए. अरविन्दाक्षन
पूर्व समकुलपति
महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय
वर्धा

प्रो. हरिमोहन शर्मा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. गोपेश्वर सिंह
प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संकाय सदस्य

प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
(पाठ्यक्रम संयोजक)

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

खंड संयोजन, संशोधन एवं संपादन

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई सं.
प्रो. अनिल राय हिन्दी विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर	13
डॉ. नलिन रंजन सिंह हिन्दी विभाग, जे.एस.पी.जी. कालेज, लखनऊ	14
प्रो. शान्ति नायर हिन्दी विभाग, शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी	15
डॉ. श्रुति एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	16

विशेष सहयोग : डॉ. नमिता सत्येन
डॉ. वावळकर शिवदत्ता बाजीराव
सुश्री भावना सरोहा

सचिवालयिक सहयोग : सुश्री हेमलता

सामग्री निर्माण

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)

मई, 2016

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2016

ISBN-978-93-86100-41-2

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक, मानविकी विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

Paper Used : "Agro based Environment Friendly"

लेजर टाइप सेटिंग : एच. डी. कंम्यूटर क्रॉफ्ट, डब्लु जैड 36ए, लाजवंती गार्डन, नई दिल्ली 110046

मुद्रक : अमेटी ऑफसेट प्रिंटर्स, 12/38, साइट - IV, साहिबाबाद, इन्डस्ट्रियल एरिया, गाजियाबाद,(उ.प्र.)

खण्ड-4 परिचय

यह कहानी संबंधी माड्यूलर के तीसरे पाठ्यक्रम 'हिन्दी कहानी' का चौथा खण्ड है। इस खण्ड में कुल चार इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं -

इकाई - 13 'एक जीता-जागता व्यक्ति' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई - 14 'सुख' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई - 15 'हरी बिन्दी' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई - 16 'बोलने वाली औरत' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इस खण्ड में एक जीता-जागता व्यक्ति (रघुवीर सहाय), सुख (काशीनाथ सिंह), हरी बिन्दी (मृदुला गर्ग), बोलने वाली औरत (ममता कालिया) जैसी अत्यंत महत्वपूर्ण कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस खण्ड को पढ़ने के पश्चात आप रघुवीर सहाय, काशीनाथ सिंह, मृदुला गर्ग और ममता कालिया जैसे महत्वपूर्ण कहानीकारों की कहानीकला से भी परिचित होंगे/होंगी।

हमें विश्वास है, इस खण्ड के अध्ययन के पश्चात आप हिन्दी कहानी के विस्तृत परिसर से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी। इस खण्ड में शामिल कहानियाँ इन लेखकों की सर्वकालिक महान कहानियाँ हैं। 'हरी बिन्दी' और 'बोलने वाली औरत' जैसी कहानियाँ स्त्री जीवन को समझने में मददगार होने वाली रचनाएँ हैं। इसी प्रकार इस खण्ड की अन्य कहानियाँ पढ़ते हुए मन और विवेक पर उनका गहरा असर पड़ता है।

इस खण्ड को पढ़ते हुए आप इसमें शामिल कहानीकारों के रचना संसार का भी संक्षिप्त परिचय पा सकेंगी/सकेंगे। इन कहानियों के विश्लेषण से गुजरते हुए आप देखेंगे/देखेंगी कि किसी कहानी की श्रेष्ठता के निर्धारण में उसकी कथावस्तु के साथ-साथ उसके रूप पक्ष का भी बड़ा योगदान होता है। इस पाठ्यक्रम के पाँचवें खण्ड में भी आप पाँच कहानियों का अध्ययन करेंगी/करेंगे।

शुभकामनाओं सहित।

इकाई 13 एक जीता-जागता व्यक्ति : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 नयी कहानी आन्दोलन का स्वरूप

13.3 'नयी कहानी' और रघुवीर सहाय का कहानी-साहित्य

13.4 'एक जीता-जागता व्यक्ति' कहानी की कथावस्तु

13.5 यथार्थ, जिजीविषा और मुक्ति-संघर्ष

13.6 दया-सहानुभूति का तार्किक निषेध और नये मनुष्य की रचना

13.7 स्वतंत्रता और समानता का अस्तित्ववादी पाठ

13.8 संरचना और भाषा

13.9 सारांश

13.10 अभ्यास

13.0 उद्देश्य

यह एम0ए0 हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल के पाठ्यक्रम की तेरहवीं इकाई है। इस इकाई में आप हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि-कथाकार रघुवीर सहाय के कहानी-साहित्य से परिचय प्राप्त करेंगे/करेंगी। इनकी एक महत्वपूर्ण कहानी 'एक जीता-जागता व्यक्ति' पाठ हेतु आपके सामने है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- नयी कहानी आन्दोलन के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- रघुवीर सहाय की कहानियों के कथ्य-शिल्प के वैशिष्ट्य से अवगत हो सकेंगे/सकेंगी।
- रघुवीर सहाय की कथा-दृष्टि की नवीनता और मौलिकता का अनुभव कर सकेंगे/सकेंगी।
- 'एक जीता-जागता व्यक्ति' कहानी की मूल संवेदना का साक्षात्कार कर सकेंगे/सकेंगी।
- 'एक जीता-जागता व्यक्ति' की संरचना और भाषा-सम्बन्धी विशेषताओं का मूल्यांकन कर सकेंगे/सकेंगी।

13.1 प्रस्तावना

नयी कविता के यशस्वी कवि रघुवीर सहाय को नयी कहानी आन्दोलन के भी एक अत्यन्त मौलिक और समर्थ कथाकर के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। वैसे, उनकी विशिष्ट पहचान हिन्दी साहित्य-समाज में उनके कवि रूप की ही बनती है। परन्तु, उन्होंने उसी दौर में कहानियाँ भी लिखीं और न केवल लिखीं, अपितु अपनी नयी दृष्टि और नये शैल्पिक प्रयोगों से उन्होंने अपनी ओर सबका ध्यान भी आकृष्ट किया। नयी कहानी आन्दोलन के ध्वजवाहकों में उनका नाम भले न शुमार हो, पर आलोचना ने उस धारा और प्रवृत्तियों के

साथ सम्बद्ध करके ही उनकी कहानियों का उल्लेख किया है। नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, उपेन्द्रनाथ अश्क, विजय मोहन सिंह, मधुरेश आदि ने रघुवीर सहाय को नयी कहानी आन्दोलन का ही लेखक माना है। दृष्टि, संवेदना और शिल्प की नवीनता इसका महत्त्वपूर्ण आधार है।

रघुवीर सहाय कविता और कहानी ही नहीं, बल्कि विभिन्न विधाओं में एक साथ आवाजाही सम्भव करने वाले रचानाकार हैं। उनके लिए विधाएं वस्तुतः रचना के माध्यम हैं। माध्यमों का यह अन्तर उनके लिए महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है-लेखक का विचार और उसकी सामाजिक संलग्नता। उनकी दृष्टि में यही वह आधार है, जो किसी लेखक की रचनात्मकता की केन्द्रीय शक्ति है। रघुवीर सहाय हिन्दी के कुछ थोड़े-से लेखकों के साथ इसीलिए स्मरणीय हैं कि लेखन उनके लिए एक गहरे सामाजिक सरोकार के सर्जनात्मक प्रतिफलन के रूप में मूल्यवान रहा है।

रघुवीर सहाय यथार्थमूलक जीवन-संवेदना के कथाकार हैं। परन्तु उनका यथार्थबोध सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक यथार्थ के रूढ़ रूप से सम्बन्धित नहीं है। इनकी कहानियां जिस अन्तर्वस्तु का चयन करती हैं, वह सर्वथा जाने-पहचाने परिवेश के भीतर की हो सकती है, पर वे जो प्रश्न उठाती हैं, जिस सत्य का उद्घाटन करती हैं, वह उस परिवेशगत यथार्थ के भीतर से, कहीं बहुत गहराई में से आता है। रघुवीर सहाय जिस 'नयी कहानी' के दौर में कहानियां लिख रहे थे, वह अपनी संवेदना और शिल्प के नयेपन के कारण पिछली कहानी से बिल्कुल अलग थी। यह अन्तर सामाजिक परिस्थितियों और उनसे जुड़ी अनुभूतियों की अनिवार्य आन्तरिक अपेक्षाओं के कारण पैदा हुआ था। समय और समाज के चरित्र में तीव्र परिवर्तनों ने उस दौर के कहानीकारों की चेतना पर एक रचनात्मक दबाव डाला था और उसका परिणाम यह हुआ कि सर्वथा एक नये परिवेश और धरातल पर कहानी की सर्जना के अतिरिक्त उन कहानीकारों के पास कोई दूसरा ईमानदार विकल्प नहीं था। यह नवीनता कथ्य और शिल्प में आये परिवर्त्तनों में साफ-साफ दिख रही थी। यह कहानी के संसार में नयी जीवन-दृष्टि के प्रवर्त्तन और प्रतिष्ठा का दौर था। रघुवीर सहाय भी नयी जीवन-दृष्टि की प्रतिष्ठा के कहानीकार हैं। जहां कहीं-भी जीवन है, उसकी गरिमा और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष है- वहां रघुवीर सहाय एक पक्षधर कहानीकार के रूप में उपस्थित हैं। जीवन, जो मृत्यु के विरूद्ध संघर्षरत है, निष्क्रियता की सारी परिधियों को अतिक्रान्त करता हुआ कर्म शील और आवेगपूर्ण है, पराधीनता अथवा परनिर्भरता की असहायताओं, दीनताओं का निषेध करता है, वह रघुवीर सहाय की कथा-यात्रा में उनका अत्यन्त प्रिय है। यह प्रिय अन्तर्वस्तु उनकी कहानियों के केन्द्र में है। ऐसी ही कहानियों में से एक है- 'एक जीता-जागता व्यक्ति।'

रघुवीर सहाय की कहानी 'एक जीता-जागता व्यक्ति' 'युग-चेतना' (अगस्त, 1957) में प्रकाशित हुई थी। बाद में, 1960 में प्रकाशित 'सीढ़ियों पर धूप में' शीर्षक संकलन में इसे सम्मिलित किया गया। इस पुस्तक में कविता और लेखों-टिप्पणियों के साथ दस कहानियां भी संकलित की गयी हैं। 'एक जीता-जागता व्यक्ति' उनमें से एक है। रघुवीर सहाय की स्वयं की दृष्टि में निश्चय ही यह एक महत्वपूर्ण कहानी रही होगी, इसका अनुमान इस बात से लगता है कि 'सीढ़ियों पर धूप में' के जिस रचना-खण्ड में कहानियां संकलित की गयीं है, उसका नामकरण 'जीता-जागता व्यक्ति' इसी कहानी के शीर्षक के आधार पर किया गया था।

13.2 नयी कहानी आन्दोलन का स्वरूप

'नयी कहानी' के स्वरूपगत वैशिष्ट्य के परिप्रेक्ष्य में रघुवीर सहाय की अनेक कहानियों का बराबर उल्लेख किया जाता रहा है। उनके कथाकार व्यक्तित्व और प्रस्तुत कहानी

'एक जीता-जागता व्यक्ति' की संवेदना एवं संरचना के विवेचन-अध्ययन के पूर्व नयी कहानी आन्दोलन के स्वरूप पर यहां विचार कर लेना कदाचित् अप्रासंगिक न होगा।

स्वाधीनता के बाद देश की परिस्थितियों में परिवर्तन हो रहा था और लेखकों-साहित्यकारों की चेतना में भी। साहित्य की विभिन्न विधाओं में इस नयी चेतना की अभिव्यक्तियों के विविध रूप सामने आने लगे थे। आशाओं-अपेक्षाओं के नये भाव-विचार निर्मित तो हो ही रहे थे, जीवन की मूल्य-प्रणाली भी बदल रही थी। व्यक्ति और समाज-केन्द्रित जीवन-सन्दर्भों को हिन्दी कहानी की भिन्न-भिन्न धाराओं-प्रवृत्तियों में अलग-अलग रूपों में व्यक्त किया जा रहा था। सामाजिक-राजनीतिक प्रश्न यदि महत्त्व प्राप्त कर रहे थे, तो आत्मपरक-वैयक्तिक प्रसंगों को भी अभिव्यक्ति मिल रही थी। नामवर सिंह की दृष्टि में कहानी विधा के लिए यह सर्वाधिक अनुकूल समय था- ''आजादी के साथ भारत में वह शिक्षित मध्यवर्ग स्थापित, विकसित और संवर्धित हुआ, जो साहित्य के इतिहास में कहानी का जन्मदाता है। शुरू के तीन-चार वर्षों की संक्रमणकालीन अराजकता की स्थिति जैसे ही समाप्त हुई और संविधान-निर्माण के द्वारा देश में जनतंत्र कायम हो गया तो साहित्य-सृष्टि के लिए एक नया वातावरण मिला। राष्ट्रभाषा हिन्दी ने राजकीय स्वीकृति प्राप्त करके भारतीय साहित्य में एक नई ऐतिहासिक भूमिका शुरू की और लोकप्रिय साहित्य-रूप कहानी को स्वभावतः सबसे अनुकूल वातावरण मिला।'' स्वाधीनता के बाद के इसी वातावरण में 'नयी कहानी' संज्ञा का प्रयोग पहली बार प्रचलन में आया था। नयी विचार-दृष्टि एवं संवेदना की कहानियां इस संज्ञा का आधार थीं। इस काल-खण्ड की कहानियां अपने अन्तर्बाह्य स्वरूप में पिछली पीढ़ी की कहानियों से पृथक् और विशिष्ट थीं। यह वैशिष्ट्य कहानी-साहित्य के तत्कालीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण सन्दर्भ है, जिसे स्पष्ट देखा-अनुभव किया जा सकता है। जीवन्त और विश्वसनीय चरित्रों तथा यथार्थ जीवन-प्रसंगों से भरा हुआ कहानीकारों का अनुभव-जगत एक नये रूप में साहित्येतिहास का हिस्सा बन रहा था और उसे अभिहित करने के लिए 'नयी कहानी' जैसे किसी नये पद के अनौचित्य का कोई तर्क किसी के पास न था। परिणाम यह हुआ कि 1956-57 तक 'नयी' पद 'विशेषण' से 'संज्ञा' में रूपान्तरित हो गया। देवीशंकर अवस्थी के अनुसार- ''नयी कहानी के अस्तित्व का प्रश्न यदि 1956 में उठाया गया था, तो दिसम्बर 1957 में प्रयाग में होने वाले 'साहित्यकार सम्मेलन' तक 'नयी कहानी' अभिधान को लगभग स्वीकार कर लिया गया था। इस सम्मेलन में पठित तीनों निबन्धों (शिव प्रसाद सिंह, हरिशंकर परसाई और मोहन राकेश लिखित) के पहले ही वाक्यों में 'नयी कहानी' का प्रयोग किया गया है।'' रचना और आलोचना, दोनों ही क्षेत्रों में हिन्दी कहानी का यह एक नया प्रस्थान था।

अनुभूति की प्रामाणिकता, ईमानदारी, परिवेशगत यथार्थ, व्यक्तिगत सामाजिकता, व्यक्ति और परिवेश की संश्लिष्टता, स्वानुभूतिपरकता आदि धारणाएं नयी कहानी के विमर्श में पहली बार सामने आईं। ये बाहर से थोपी गयीं मान्यताएं या अपेक्षाएं नहीं थीं, नये कहानीकार अपनी कृतियों से इन्हें अन्वेषित और पुष्ट कर रहे थे। आलोचना के पूर्व ये रचना के आन्तरिक तत्त्व थे और इन्हीं के आधार पर कहानी अपनी संवेदना तथा रूप-संरचना में नया प्रस्थान ले रही थी। कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', 'जानवर और जानवर', राजेन्द्र यादव की 'जहां लक्ष्मी कैद है', रांगेय राघव की 'गदल', अमरकान्त की 'डिप्टी कलक्टरी', निर्मल वर्मा की 'परिन्दे', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', शेखर जोशी की 'बदबू', 'दाज्यू' और 'कोसी का घटवार', रघुवीर सहाय की 'कहानी की कला' 'सेब' और 'एक जीता-जागता व्यक्ति', मन्नू भण्डारी की 'यही सच है', ऊषा प्रियम्बदा की 'वापसी', धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो', हरिशंकर परसाई की 'भोलाराम का जीव' आदि कहानियों ने अपनी नयी अन्तर्वस्तु तथा प्रयोगशील शिल्प के कारण नयी कहानी आन्दोलन के वैशिष्ट्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया था।

नये कहानीकारों ने अपने समय, समाज और जीवन के गहन तथा व्यापक यथार्थ की अनुभूतियों को कहानी का आधार बनाने का प्रयत्न किया था। उनकी कहानियां अपनी पूर्ववर्त्ती कथा-परम्परा की अन्तर्वस्तु और रूप-विन्यास की रूढ़ियों से स्वयं को मुक्त करते हुए सर्जनात्मकता के सर्वथा नये आयाम उद्‌घाटित कर रही थीं।

जीवन-यथार्थ और कहानी के बीच का सम्बन्ध नया नहीं है। समाज और साहित्य के घनिष्ठ अन्तःसम्बन्धों में इसे बार-बार देखा-समझा गया है। नयी कहानी के पूर्व की कथा-परम्परा में यह जीवन और उसका यथार्थ न केवल चित्रित होता रहा है, अपितु उसके साथ कहानीकारों की संवेदनात्मक अन्तर्क्रिया कहानी को एक विशेष शक्ति-सौन्दर्य प्रदान करती रही है। कहानीकार और जीवन की यह अन्तरंगता जितनी आत्मीय एवं घनिष्ठ होती रही है, कहानी में कथ्य का प्रभाव उतना ही अधिक। परन्तु, नयी कहानी के दौर का जीवन-सत्य पहले की तुलना में अधिक जटिल, विडम्बनापूर्ण और त्रासद था। उसके साथ नये कहानीकार का सम्बन्ध केवल रचना-प्रक्रिया के क्षणों की संवेदनात्मक सम्पृक्ति का नहीं हो सकता था। यह नये तरह का सम्बन्ध था, जिसमें समकालीन परिवेशगत यथार्थ के साथ लेखक की भोक्ता-संवेदना और चेतना का एक अविच्छिन्न सम्बन्ध अपरिहार्य हो उठा था। परिवेश का ऐसा यथार्थ और उसके साथ कहानीकार की ऐसी अविच्छिन्नता नयी कहानी के दौर के पहले नहीं देखी गयी। इन कहानियों में व्यक्ति और उसके परिवेश के परस्परसम्बन्ध पर विशेष बल दिया गया है। जीवन में वैयक्तिक-सामाजिक परिवेश की प्रभावी भूमिका होती है। इसलिए परिवेशगत यथार्थ का चित्रण इन कहानियों में पूरी विशिष्टता के साथ उभरता दिखता है।

नयी कहानी के केन्द्र में उसके अपने समय का यथार्थ है, उसकी समकालीनता है। यह वर्तमान की व्यथा-कथा है। यह वर्तमान अनेक प्रकार के संकटों और संघर्षों, तनावों और विडम्बनाओं से भरा हुआ है। इसमें गांव और शहर है, स्त्री-पुरूष, पति-पत्नी और प्रेमिका है, बेरोजगारी और निराशा है, व्यक्ति और उसका परिवार है- उसका बनना और टूटना है, उल्लास है तो अवसाद भी है, पुरानी आस्थाओं, निष्ठाओं और राजनीति के प्रति मोहभंग है, तो मूल्यों का विघटन और सृजन भी है। नयी कहानी का यह कथ्य-परिदृश्य अत्यन्त विस्तृत और छबिबहुल है। इसे कहानीकार के अपने प्रामाणिक अनुभव का सर्जनात्मक रूपान्तरण माना गया। कहा गया कि कहानीकार अपने अनुभूत जीवन-यथार्थ को ही विश्वसनीय ढंग से व्यक्त कर सकता है। वस्तुतः अनुभूति की प्रामाणिकता के इस तर्क का प्रयोग जीवन और यथार्थ से कटी हुई निरपेक्ष कल्पना तथा दार्शनिक मंत्तव्यों के आधार पर लिखी जाने वाली कहानियों के रचनाशास्त्र के प्रतिवाद के लिए किया गया। वायवीय कल्पना और पूर्वनिर्धारित विचार-सरणियों, दोनों से तटस्थता बनाने की कोशिश में नयी कहानी की एक सीमा भी बनी कि उसकी अनुभूति की प्रामाणिकता वैयक्तिक अनुभववाद में अपघटित हो गयी। यह समूचे नयी कहानी आन्दोलन का सच तो नहीं था, परन्तु ऐसी अनेक कहानियां थीं, जिनमें यह सीमा स्पष्ट देखी जा रही थी। प्रामाणिक अनुभव के व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का अन्वेषण कर पाने में जिन कहानीकारों को सफलता मिल गयी थी, वे तो अनुभववादी वैयक्तिकता की सीमाओं से कहानियों को बचा ले गये थे, अन्यथा कुण्ठा, अवसाद, संत्रास, तनाव, विक्षोभ, अलगाव, निराशा और व्यक्तित्व-विघटन की रूग्ण प्रवृत्तियाँ कहानियों का मूल कथ्य बनने लगी थीं। जीवन, जगत की व्यापक अनुभव-सम्पदा से विच्छिन्न वैयक्तिक अनुभवों की परिधि में सिमट जाने के कारण ऐसा हो रहा था। लेखक के अपने व्यक्तिगत अनुभव का आधार रचना के लिए बहुत मूल्यवान है, किन्तु यह मूल्यवत्ता इन अनुभवों के गहन-व्यापक समाजीकरण के बिना अर्जित नहीं की जा सकती थी। नयी कहानी के एक हिस्से के साथ यही घटित हो रहा था। इन रूग्ण प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति के तार्किक औचित्य-निरूपण के प्रयत्न भी किये गये। इन प्रवृत्तियों की पूर्व कथा-परम्परा से इस नवीनता के लिए इन्हें

अलगाया गया कि नयी कहानी की ये अभिव्यक्तियां अधिक तटस्थ और निर्वैयक्तिक हैं। राजेन्द्र यादव ने कहा कि यह दृश्य की रूग्णता है, दृष्टि की नहीं। पर, इस आन्दोलन के कई कहानीकारों ने आत्मावलोकन करते हुए अपनी इन सीमाओं को स्वीकार किया था। उन्होंने माना था कि एक स्पष्ट, वस्तुनिष्ठ, विचार-दृष्टि के बिना कोई भी व्यक्तिगत अनुभव वस्तुतः अपनी ऊर्जा खोकर लक्ष्यच्युत् हो जाता है।

नयी कहानी आन्दोलन से अनेक असहमतियां रखने वाले लेखकों-आलोचकों को भी इस तथ्य को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि इसने हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं के सापेक्ष कहानी को एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। कहानी में अपने समय, समाज और परिवेश का विश्वसनीय सर्जनात्मक प्रतिफलन इस प्रतिष्ठा का मुख्य आधार था। इन कहानियों ने पत्र-पत्रिकाओं में ही अपने लिए एक बड़ा भूगोल नहीं उपलब्ध किया था, अपितु एक बृहत्तर लेखकीय-पाठकीय आधार निर्मित करने में इन्हें एक बड़ी सफलता प्राप्त हुई थी। लेखकों और आलोचकों के बीच चलने वाली उन मूल्यवान बहसों के लिए भी इस आंदोलन का ऐतिहासिक महत्व है, जिनके भीतर से न केवल कहानी विधा, बल्कि समाज और साहित्य के सम्बन्धों के व्यापक सन्दर्भ में पहली बार अनेक सार्थक प्रश्न उभर रहे थे तथा रचना एवं आलोचना का एक नया शास्त्र आकार ग्रहण कर रहा था।

एक अत्यन्त छोटे कालखण्ड के भीतर रचे गये इस कहानी-साहित्य ने अपनी कतिपय सीमाओं के बावजूद विचार-दृष्टि, संवेदना और भाषिक संरचना की श्रेष्ठतर उपलब्धियां अर्जित की हैं। नयी संवेदना पर केन्द्रित होने के कारण इन कहानियों की भाषा और उनके समग्र विन्यास में एक नया परिवर्तन घटित हुआ था। पुराने संघटन में नये कथ्य की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं थी। अतः यह रूप-परिवर्तन अपरिहार्य था। यह भाषा अपनी अर्थ-भंगिमा में तीक्ष्ण और गहरी थी। इसी भाषा-संरचना से उस दौर की कहानियों को अनावश्यक विस्तार की कमजोरियों से बचाया जा सका था। इस रचनात्मक प्रयत्न में नयी कहानी बिम्बधर्मी और सूक्ष्म-सांकेतिक भी हुई। किन्तु, उसकी यह सांकेतिकता-संश्लिष्टता उसमें अभिव्यक्त सघन जीवनानुभूतियों और यथार्थ की जटिलता के सापेक्ष स्वाभाविक और अर्थपूर्ण थी।

नयी कहानी आन्दोलन के महत्व पर नामवर सिंह की यह टिप्पणी सर्वथा संगत है- ''यह तो नयी कहानी के विरोधी भी स्वीकार करते हैं कि अकेले इस दशक में हिन्दी में जितनी अच्छी कहानियाँ लिखी गयीं, वह अपने आप में एक मिसाल है। हिन्दी की जो नयी प्रतिभाएं कुछ समय पहले कविता की ओर मुड़ जाया करती थीं, वे तथा वैसी अनेक प्रतिभाएं इस दशक में प्रायः कहानी के क्षेत्र में आ गयीं।'' कहना न होगा कि रघुवीर सहाय नयी कविता और नयी कहानी के बीच समान रूप से सक्रिय एक ऐसी ही प्रतिभा थे।

13.3 'नयी कहानी' और रघुवीर सहाय का कहानी-साहित्य

कविता, लेख, व्यंग्य, उपन्यास, यात्रा एवं बाल-साहित्य, डायरी तथा अनुवाद के साथ कहानी-विधा में रघुवीर सहाय की सर्जनात्मक सक्रियता निरन्तर बनी रही है। 'सीढ़ियों पर धूप में', 'रास्ता इधर से है', और 'जो आदमी हम बना रहे हैं' में इनकी कहानियाँ संकलित हैं। कुछ प्रकाशित-अप्रकाशित कहानियाँ इनके तीसरे संग्रह के बाद सुरेश शर्मा के सम्पादन में 'रघुवीर सहाय रचनावली-2' में संकलित की गयी हैं। ये कुल तीन दर्जन कहानियाँ हैं, जो वस्तु और शिल्प की नवीन सर्जनात्मकता के कारण रघुवीर सहाय को कवि-लेखक और पत्रकार की ही भाँति एक गम्भीर और मौलिक कहानीकार के रूप में भी प्रतिष्ठित करती हैं। यह सच है कि इनका कहानीकार रूप कवि-विचारक रूप के

सापेक्ष बहुत अधिक मूल्यांकन-विश्लेषण का विषय न बन सका, पर जितना-भी बन सका है-महत्त्व के साथ रेखांकित किया गया है।

प्रथम कहानी 'आधी रात का तारा' से लेकर अन्तिम कहानी 'कूड़े के देवता' के बीच रघुवीर सहाय की पहचान मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों और उनकी प्रकृति में घटित होने वाले नये परिवर्तनों के गहन पर्यवेक्षण और उनके सर्जनात्मक रूपान्तरण के कहानीकार के रूप में निर्मित होती दिखती है। मनुष्य और उसके परिवेश के विविध घटकों के आपसी सम्बन्धों के आकलन का प्रश्न आरम्भ से ही रघुवीर सहाय के लिए महत्त्वपूर्ण रहा है। कथा-संग्रह 'रास्ता इधर से है' की भूमिका में उनकी यह चिन्ता पहली बार कुछ इस रूप में प्रकट हुई थी-''राज्य और व्यक्ति के सम्बन्ध को अधिकाधिक समझना आधुनिक संवेदना की शर्त्त है। इस शर्त्त से कतराना मनुष्य की आज की अवस्था को मनुष्य के सामर्थ्य से बाहर मानकर चलने के बराबर है; वैसा मान लें, तो फिर कुछ रचने को रह ही नहीं जाता। विश्व के शक्ति-केन्द्रों के परस्पर सन्तुलन और समन्वय की प्रक्रिया ने मनुष्य को दिन-प्रतिदिन और अधिक अकेला तथा निरूपाय किया है, यह प्रतीति ही रचना की सबसे बड़ी प्रेरणा है।'' मनुष्य के अकेलेपन और असहायता की त्रासद् व्यथा में रचना की शक्ति का स्रोत है- यह कहकर रघुवीर सहाय ने अपना वैचारिक परिप्रेक्ष्य स्पष्ट कर दिया था। उन्हें पता था कि इस व्यथा का गहन सम्बन्ध मनुष्य के सामाजिक परिवेश के साथ है। यह परिवेश मनुष्य और मनुष्य के बीच के सम्बन्धों में निर्मित हुआ है। कहानी को इन्हीं सम्बन्धों के विवेचन, परिवर्तन और निरूपण के कार्यभार से जोड़ते हुए उन्होंने अगले कहानी-संग्रह 'जो आदमी हम बना रहे हैं' की 'भूमिका' में घोषित किया-''पाठक या श्रोता मनुष्यों के बीच के जिस रिश्ते को जानते हैं, उसके बदलने और बदलकर नया रूप ले लेने की प्रक्रिया ही कहानी है। लेखक के मन में भी यही परिभाषा होनी चाहिए और पाठक के भी।'' रघुवीर सहाय इस रूप में कहानी को परिभाषित ही नहीं कर रहे थे, बल्कि अपनी कहानियों के माध्यम से इसी के अनुरूप अपने लेखकीय दायित्व का निर्वाह भी कर रहे थे। इनकी कहानियाँ इसका प्रमाण हैं।

रघुवीर सहाय की 'कहानी की कला', 'सेब', 'खेल', 'एक जीता-जागता व्यक्ति', 'उमस के बाहर', 'मेरे और नंगी औरत के बीच', 'विजेता', 'रास्ता इधर से है', 'मुठभेड़', 'मुक्ति का एक क्षण', 'एक छोटी-सी यात्रा' आदि कहानियों की विशेष रूप से चर्चा होती रही है। उनकी सभी कहानियों में सघन मानवीय संवेदना का एक सक्रिय वातावरण उपस्थित है। इसमें परिवेशगत यथार्थ के बनते-टूटते रूपों, व्यक्ति-व्यक्ति और व्यक्ति-समाज के सम्बन्धों की पहचान के साथ नैतिक-सांस्कृतिक मूल्यों के परीक्षण के अनेक सन्दर्भ विद्यमान हैं। जीवन के कोमल, सुन्दर और उदात्त की रक्षा में खड़ी इन कहानियों की शक्ति यह है कि ये यथार्थ के परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा से भरी हुई हैं। मनुष्यों के बीच समानता के लोकतांत्रिक सम्बन्धों की स्थापना का तर्क रचती ये कहानियाँ दया, करूणा एवं सहानुभूति जैसे मानवीय भावों को भी इसलिए प्रश्नांकित कर देती हैं कि इनसे एक व्यक्ति को स्वयं को अन्य से श्रेष्ठ और समर्थ अनुभव करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। 'एक छोटी-सी यात्रा', 'सेब', 'एक जीता-जागता व्यक्ति' 'मेरे और नंगी औरत के बीच' इसी दृष्टि-संवेदना की कहानियाँ हैं। इन सभी कहानियों में करूणा एवं सहानुभूति उत्पन्न करने वाले घटना-प्रसंग या स्थितियाँ हैं। व्यथा और असहायता के दृश्य हैं और कहानी का कोई एक पात्र उसके प्रति सहानुभूति शील है। परन्तु, रघुवीर सहाय असमानता के भीतर से उपजने वाली इस संवेदना की मूल प्रकृति की पहचान कराते हुए उसके औचित्य पर ही प्रश्न उठा देते हैं। 'कहानी की कला' शीर्षक कहानी भी इन्हीं भावों के परीक्षण का आधार प्रस्तुत करती है। इसमें कहानीकार और पाठक, दोनों की दृष्टि एवं संवेदना को जांचने-परखने का एक गम्भीर प्रस्ताव है। दया, सहानुभूति का समाजशास्त्र यहां कहानी के सौन्दर्य शास्त्रीय प्रश्न के रूप में सामने आता है। जो आदमी हम बना रहे हैं,

वह रघुवीर सहाय की अनेक कहानियों की मूल चिन्ता है। व्यवस्था की मार सहता, उससे लड़ता-संघर्ष करता, बनता-टूटता आदमी अपने परिवेश के साथ जो सम्बन्ध निर्मित कर रहा है, जो कुछ अर्जित कर पा रहा है या जिससे वंचित हो रहा है- वे सारे सन्दर्भ, नये बनते हुए आदमी और उसके समाज के सन्दर्भ रघुवीर सहाय के लिए बहुत अर्थवान हैं। अपनी सभी कहानियों में रघुवीर सहाय मनुष्य के संघर्ष और उसकी जिजीविषा के पक्ष में खड़े दिखते हैं। पिता और माँ की अनिच्छाओं के बावजूद एक नवजात के इस संसार में जन्म लेने का मार्मिक प्रसंग 'विजेता' कहानी की शक्ति है। एक छोटा-सा कथ्य कहानीकार के तरल आत्मीय संस्पर्श के कारण एक विराट मानवीय संवेदना की अनूठी कृति बन जाती है। 'खेल' वस्तुओं के संसार से किसी बच्चे के निरन्तर नये बनते सम्बन्धों को अत्यन्त विश्वसनीय ढंग से उद्घाटित करती कहानी है। खेल की प्रक्रिया में नये के अनुसंधान की मौलिक चेष्टा और अपनी ही बनायी पद्धति को अतिक्रान्त कर अपेक्षाकृत कुछ पृथक् रचती यह कहानी सौन्दर्य एवं आनन्द की नयी उद्भावना करती है। 'उमस के बाहर' जड़ सौन्दर्यानुभूति की रूढ़ियों को तोड़ती एक अच्छी कहानी है। कथा-वाचक बारिश के बाद की उमस से बाहर निकलने के लिए खेतों की ओर जाने वाली सड़क पर पैदल चलता हुआ एक ऐसे मोड़ पर पहुँचता है, जहां से कच्ची-गीली मिट्टी का एक मैदान शुरू होता है। कथा-वाचक का मन उस परिवेश और वातावरण के सौन्दर्य में रमता जा रहा है कि उसे साफ-सुथरे, किरमिच के दो नन्हें-नन्हें जूते रखे हुए दिख जाते हैं। कथा-वाचक कहता है- ''मैंने गौर से देखा- हाँ, दो साफ-सुथरे, प्यारे-प्यारे रंगीन जूते, जैसे दो गोरे-गोरे नन्हें-नन्हे पांव इनमें से अभी कूदकर भाग गये हैं।'' यहां से कथा-वाचाक का पूरा सौन्दर्यबोध बदल जाता है। प्रकृति के एकान्त में मानवीय जीवन का कोमल सन्दर्भ कथा-वाचक को सौन्दर्य का एक नया परिप्रेक्ष्य दे जाता है। इस प्रकार के सुन्दर क्षणों को अपने अन्तःकरण में बसा लेने का एक प्रगाढ़ राग-भाव रघुवीर सहाय में मौजूद है। प्रतिबद्धता की सीमा तक। 'मुक्ति का एक क्षण' सीधे-सरल ढंग से देखें तो छतपर दाना चुगने आ जाने वाले एक कबूतर के प्रति कथा-वाचक की सहृदयता की कहानी प्रतीत होगी, पर है यह एक सुन्दर समय और उसकी उतनी ही सुन्दर छवि को अपने भीतर उपलब्ध कर लेने की तीव्र लालसा की कहानी। जीवन में, संसार में जहां-भी, जितना-भी सुन्दर और संवेदनशील है, उसके प्रति गहरी आसक्ति ऐसी कहानियों में प्रत्यक्ष है। यह वस्तुतः जीवन के प्रति आसक्ति है। यह कहानी कबूतर के प्रति किसी सहानुभूति या दया-भाव देखे जाने की सम्भावना को स्पष्टतः अस्वीकार करती है- ''क्या मैं कह सकता हूँ कि कबूतर सुन्दर लग रहा है? मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि ऐसा कहने में कोई अनुग्रह नहीं है, कोई बन्धन नहीं है। वह मुझे अच्छा लग रहा है- बस इतना ही सच है।'' रघुवीर सहाय अपने परिवेश, घटनाओं, जीवन-दृश्यों, वैयक्तिक-सामाजिक प्रसंगों पर गहरी नज़र रखने वाले कहानीकार हैं। वह ऐसी जगह से भी अपनी कहानी के लिए कोई संवेदना ग्रहण कर सकते हैं, सामान्य कहानीकार जहां से उम्मीद भी नहीं कर सकता। अपने परिवेश के प्रति यह सतर्क संवेदनशीलता उन्हें कहानी की असाधारण कथ्य-भूमि उपलब्ध कराती है।

रघुवीर सहाय की कहानियों के बारे में विजय मोहन सिंह का कहना है- ''हिन्दी के किसी भी कहानीकार की कहानियों से रघुवीर सहाय की कहानियों की तुलना नहीं की जा सकती। वे चकित कर देने की हद तक अपनी भाषा और बुनावट में ही नहीं जीवन के प्रति अपनी दृष्टि में भी अद्वितीय हैं।'' इन कहानियों की नवीनता और शक्ति के बारे में उनका विचार है कि नयी कहानी के स्वरूप-निर्माण के सम्बन्ध में कहानी के पारम्परिक तत्वों के निषेध की जो घोषणाएं उस दौर में सामने आ रही थीं, 'राजा निरबंसिया', 'मलबे का मालिक', 'डिप्टी कलक्टरी' और 'परिन्दे' नहीं, बल्कि रघुवीर सहाय की 'एक जीता-

जागता व्यक्ति', 'सेब', 'मेरे और नंगी औरत के बीच', 'कहानी की कला' जैसी कहानियाँ उनकी पुष्टि कर रही थीं। नयी कहानी आन्दोलन के अध्येताओं ने यह लक्ष्य किया है कि पूर्व कथा-परम्परा की संवेदना और संरचना के वातावरण के विरूद्ध अपने नये रचनात्मक हस्तक्षेप से जिन कहानियों ने एक सार्थक विचलन अथवा नया प्रस्थान सम्भव किया था, उनमें रघुवीर सहाय की कहानियां भी शामिल थीं। कहानी की पुरानी संरचना टूट रही थी और उसके स्थान पर एक नया कथ्य-विन्यास अन्वेषित किया जा रहा था। रघुवीर सहाय इस प्रयत्न में सम्मिलित महत्वपूर्ण कहानीकारों में से एक रहे हैं।

रघुवीर सहाय के कवि और कहानीकार व्यक्तिव की रचनात्मक सक्रियता साथ-साथ बनी रही है। उनका कवि-रूप अधिक प्रतिष्ठित हुआ। उनकी कहानियों का महत्त्व और वैशिष्ट्य बाद के दिनों में लगभग भुला दिया गया। वह साहित्य-विमर्श में कविताओं की तुलना में प्रायः अनुपस्थित ही रहा है। इसके बावजूद उनकी कहानियों का महत्त्व कम नहीं हुआ है।

13.4 'एक जीता-जागता व्यक्ति' कहानी की कथावस्तु

'एक जीता-जागता व्यक्ति' दो-ढाई पृष्ठों की एक अत्यन्त छोटे आकार की कहानी है। यह घटनाबहुल कहानी नहीं है। अनेक पात्रों, उनकी क्रियाओं, दृश्यात्मक गतिविधियों के बीच निर्मित होने वाली कहानी की जगह यह एक बहुत संक्षिप्त-से, अल्पकालिक प्रसंग पर केन्द्रित है।

'मैं' शैली में लिखी गयी इस कहानी का वाचक अपने एक मित्र के साथ साइकिल से चला जा रहा है। अचानक उसकी दृष्टि निर्माणाधीन सड़क के गीले कोलतार में फँसी हुई एक चिड़िया पर जाती है। पीली चोंच, पीले पंजे, काला सिर और कत्थई देहवाली पिड़कुलिया या देसी मैना जैसी लगती, यह चिड़िया कोलतार से बाहर निकलने के लिए बेचैन है, लगातार कोशिश कर रही है, बदन को इधर-उधर झटके दे रही है, पर मुक्त नहीं हो पा रही है। वहाँ कुछ कौए भी इकट्ठा हो गये हैं, चिड़िया में शायद उन्हें अपना शिकार दिख रहा है। कथा-वाचक यह देखकर वहाँ रुकता है और इसकी ओर अपने मित्र का ध्यान आकृष्ट कराता है। संध्या का समय है, सूरज डूब रहा है और सड़क पर यातायात की भारी भीड़ है। सब अपने रास्ते चले जा रहे हैं, किसी को किसी की परवाह नहीं है, किसी का किसी में कोई हस्तक्षेप नहीं है। पर, चिड़िया के कोलतार में फंसे होने का एक दृश्य-प्रसंग है और ये दोनों मित्र उसके साक्षी हैं। कथा-वाचक के मित्र को चिड़िया के मुक्ति-प्रयत्न बिल्कुल मनुष्यों जैसे लगते हैं। कथा-वाचक चिड़िया के साथ सहानुभूति अनुभव करता है। उसके मन में चिड़िया को कोलतार की फांस से निकाल देने का विचार पैदा होता है। किन्तु तत्काल उसका यह विचार एक दूसरे विचार में बदल जाता है। वह सोचता है कि यह दया-सहानुभूति का भाव स्वतंत्र होने के लिए संघर्ष करती इस चिड़िया का अपमान है। वह उसे स्वयं के प्रयत्नों से मुक्त होने का सम्मानजनक अवसर उपलब्ध कराना चाहता है। वह उसकी इस जिजीविषा को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानता है। उसे विश्वास है कि वह मुक्त हो जायेगी, क्योंकि वह न तो मिट्टी की बनी हुई निर्जीव चिड़िया है और न ही भुस-भरी। कथा-वाचक उसके प्रति अपनी संवेदना को लगातार प्रश्न और परीक्षण का विषय बना रहा है। वह सोचता है कि आखिर उसके इस संघर्ष के प्रति उसके मन में कैसा भाव है, जो वह दया-सहानुभूति की अभिव्यक्ति के प्रति उसमें संकोच पैदा कर रहा है।

कुछ देर बाद जब चिड़िया की तड़प, बेचैनी, उसका दुःख कथा-वाचक को सहन नहीं हो पाता, तो यह उसे छुड़ाने के लिए आगे बढ़ता है। पर यह क्या? चिड़िया की आँखों में

कथा-वाचक के प्रति अविश्वास का भाव था। वह डरकर छटपटाई और जैसे यह कहती-सी प्रतीत हुई कि नहीं, नहीं, वह स्वयं छूटने की कोशिश में है। चिड़िया ने अपनी सारी शक्ति एकत्र कर, पंखों को खोलकर जोर-से फड़फड़ाते हुए इस बार जो कोशिश की, तो वह आजाद थी। वह बस्ती की ओर उड़ चली और इधर कौए बदहवासों की तरह फुदकने लगे।

कहानी कथा-वाचक और उसके मित्र के संवाद में समाप्त होती है। मित्र जो विनोद में अक्सर टोकता रहता है कि कथा-वाचक हमेशा सड़क पर पड़ी हुई किसी चीज को पा लेने के इरादे में दिखा करता है, वह यहाँ भी टिप्पणी करता है कि 'हम तो खुश हुए थे कि चलो, तुम्हें कुछ मिल गया पड़ा हुआ।' कथा-वाचक के इस अर्थगर्भित उत्तर के साथ कहानी का अन्त होता है कि हाँ मिला तो था, परन्तु चिड़िया उसे अपने साथ लेकर उड़ गयी।

13.5 यथार्थ, जिजीविषा और मुक्ति-संघर्ष

रघुवीर सहाय की प्रस्तुत कहानी 'एक जीता-जागता व्यक्ति' में किसी सीधे-सपाट और इकहरे सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ को विषय बनाने की जगह यथार्थ के एक ऐसे रूप का चयन किया गया है, जो मनुष्य के वर्तमान और भविष्य के साथ गहराई से सम्बद्ध है। मनुष्य का समकालीन जीवन-यथार्थ एक क्रूर त्रासदी में बदल गया है और वह उस भोगने के लिए अभिशप्त-सा है। परन्तु, इन्हीं भीषण जीवनानुभवों के भीतर से, विपरीत परिस्थितियों के विरूद्ध संघर्ष करता हुआ मनुष्य अपने वर्तमान और भविष्य की दशा और दिशा परिवर्तित कर देने के लिए उद्यत दिखता है। अपने अस्तित्व की रक्षा और उसके सहज विकास के लिए वह निर्णय लेना भी जानता है और किसी बाहरी सहयोगमूलक हस्तक्षेप को अस्वीकार करते हुए एक स्वतंत्र संघर्ष के विकल्प का चयन करना भी।

इस कहानी का मूल कथ्य एक चिड़िया की जीवन-विरोधी आपात् परिस्थितियों से जुड़ा हुआ है। प्रथम दृष्टया यहां इस कहानी में एक मानवेतर प्राणी का जीवन-संघर्ष केन्द्र में है। किन्तु, महत्वपूर्ण है कि चिड़िया के संघर्ष के दृश्य-सन्दर्भों में कथा-वाचक 'मैं' की चेतना-संवेदना भी कहानी के भीतर लगातार रेखांकित हो रही है। चिड़िया के संघर्ष-उपक्रमों के समानान्तर कथा-वाचक की दृष्टि और संवेदना का प्रकाशन अर्थपूर्ण है, क्योंकि उसी की प्रतिक्रियाओं में रघुवीर सहाय की कथा-दृष्टि और जीवन-दृष्टि आकार ग्रहण करती है। यहां कहानी के पूरे परिदृश्य में दो क्रियाएं एक साथ घटित होते हुए दिखती हैं। एक, चिड़िया का आत्म-संघर्ष, अर्थात् कोलतार में से निकलने के लिए उसका अपना मुक्ति-प्रयास और दूसरा, कथा-वाचक की संवेदना में पल-पतिपल घटती उसी प्रकार की एक और आकांक्षा। यहां 'मैं' केवल दृश्य-प्रक्रिया में ही सम्मिलित नहीं है, वह उस पूरे दृश्य के साथ एक ऐसी समानुभूति स्थापित करता है कि चिड़िया का वह संघर्ष उसका अपना संघर्ष, मनुष्य की मुक्ति का संघर्ष बन जाता जाता है। कथा-वाचक के लिए वहां एक निस्संग दृश्य नहीं है। वह एक दर्शक नहीं है, उसी में शामिल है। वह केवल देख नहीं रहा है, वह स्वयं उस दृश्य में रूपान्तरित है। इसलिए, इस कहानी से यह निष्कर्ष तो नहीं निकाला जा सकता कि इस में कथा-वाचक के मन में उस चिड़िया के प्रति तटस्थता या उदासीनता का भाव है और उसके जीवन या संघर्ष से उसका कोई सरोकार नहीं है। कथा-वाचक वस्तुतः एक मुक्ति-संघर्ष का वह प्रतिबद्ध द्रष्टा है, जो चिड़िया को उसके स्वाधीन प्रयत्नों के लिए पूरा सम्मान और अवसर देना चाहता है। यह मुक्ति-संघर्ष कथा-वाचक के तोश एवं संतृप्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। देखने में किसी को इस स्रोत का सन्दर्भ व्यक्तिगत लग सकता है, पर यही व्यक्तिगत वह सामाजिक भी है, जो उसे एक बड़ा मूल्य प्रदान करता है। नयी कहानी आन्दोलन में इस व्यक्तिगत

सामाजिकता को जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी, उसका एक रूप, किंचित सन्दर्भ-परिवर्तन के साथ इस कहानी में देखा जा सकता है।

यह व्यवस्था के क्रूर यथार्थ, मनुष्य की जिजीविषा और उसके मुक्ति-संघर्ष के बहुत गहरे प्रतीकात्मक अभिप्रायों की कहानी है। चिड़िया, कोलतार, बीच सड़क की यह घटना, कोलतार का रंग और उस पर पड़ी धूल की पर्त, कौओं का झुण्ड- ये सभी प्रतीकात्मक प्रतीत होते हैं। इन सारे सन्दर्भों के साथ इस कहानी को व्यवस्था और तंत्र की फांस में पड़े मनुष्य के जीवन और उसके परिवेश के वृहत्तर यथार्थ के एक रूपक की तरह भी पढ़ा जा सकता है। यह छोटी-सी निरीह-सी चिड़िया क्या उस सामान्य और कमजोर मनुष्य का प्रतीक नहीं प्रतीत होती, जो अपनी परिस्थितियों में बुरी तरह फंसा हुआ है और उसमें से बाहर निकलने के लिए हाथ-पांव मार रहा है, बेचैन है और तड़पता रहा है! क्या यह चिड़िया उस आम आदमी का प्रतीक नहीं है, जो इस समाज-व्यवस्था के भीतर से निर्मित दारूण विपदा से मुक्त होने के लिए जितना अधिक प्रयत्न कर रहा है, वह उसमें उतना ही अधिक धंसता जा रहा है। यह चिड़िया काले रंग के उस कोलतार में फंसी हुई है, जो धूल की पर्त्त जम जाने के कारण उसे दिखाई न पड़ा था। व्यवस्था का काला और मारक चरित्र धूल जमे कोलतार की तरह ही नीचे, कहीं भीतर छुपा होता है और ऊपर उसका एक छद्म आवरण जनता को भ्रमों में उलझाए रखता है। सड़क और उसपर पड़ा हुआ कोलतार अपनी पूरी प्रकृति में इस तंत्र के जीवन-विरोधी चरित्र की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। अपने परिवेश और परिस्थितियों में फंसा हुआ आदमी तंत्र के विभिन्न लोलुप, चालाक और क्रूर घटक-समूहों की हिंस्र दृष्टि में होता है। उनके लिए आम आदमी एक निरीह शिकार है। कहानी में कौओं के झुण्ड की, उनकी गतिविधियों की यह व्याख्या असंगत न होगी। कोलतार और कौओं के काले रंग की समानता से दोनों के निकट सम्बन्ध का आशय ग्रहण करने में भी कोई बाधा नहीं नज़र आती। रंग की यह समानता अपने अर्थ-संकेत में व्यवस्था और उसके सहयोगी घटकों की समानता है।

प्रस्तुत और प्रतीकात्मक, दोनों ही सन्दर्भों में यह कहानी जीवन के प्रति गहरी आस्था का सृजन करती है। उत्कट जिजीविषा और विश्वास से भरी यह कहानी यथार्थ के बिल्कुल एक नये परिप्रेक्ष्य का उद्घाटन करती है। यथार्थ अत्यन्त जटिल है, पर उसका प्रतिरोध अथवा समाधान असम्भव नहीं है। यहां उसी के भीतर से परिवर्तन और नये जीवन-रूपों की रचना की सम्भावनाएं जन्म लेती हैं। रघुवीर सहाय अपनी इस कहानी में त्रासद् यथार्थ के समक्ष एक जीवन्त-सकर्मक चिड़िया या मनुष्य की परिवर्त्तनकामी चेतना और शक्ति को खड़ा करते हैं। यह यथार्थ के विरूद्ध यथार्थ का प्रतिवाद है। परिवेशगत यथार्थ के विरूद्ध मनुष्य के मुक्ति-संघर्ष के यथार्थ को रेखांकित करती यह कहानी नये यथार्थ के सृजन की सम्भावनाओं को भी उद्घाटित करती है।

13.6 दया-सहानुभूति का तार्किक निषेध और नये मनुष्य की रचना

दया, सहानुभूति जैसे भाव-मूल्य अपनी प्रकृति में अत्यन्त श्रेष्ठ और मानवीय माने जाते हैं। मनुष्य की सामाजिक-सांस्कृतिक यात्रा में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की जाती है। इन मूल्यों का विरोध सामान्यतः मनुष्यता का विरोध बन जाता है। किन्तु, रघुवीर सहाय की अनेक कहानियां इन मूल्यों का विरोध करते हुए भी मनुष्य के जीवन, उसकी गरिमा और स्वतंत्रता की रक्षा में खड़ी नजर आती हैं। ये कहानियां किसी के प्रति व्यक्त की गयी दया और सहानुभूति को उसके आत्म-सम्मान का निषेध बताती हैं। 'एक जीता-जागता व्यक्ति' का कथा-वाचक 'मैं' एक प्रसंग में सोचता है- ''सहानुभूति एक जगह

अनादर भी बन जा सकती है।'' इस कहानी की दृष्टि और संवेदना के परिप्रेक्ष्य में रघुवीर सहाय की ही कुछ अन्य कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। 'कहानी की कला', 'सेब', 'मेरे और नंगी औरत के बीच', 'एक छोटी-सी यात्रा' आदि कहानियों में दया-सहानुभूति के भावों का वैसा ही तार्किक निषेध किया गया है, जैसा 'एक जीता-जागता व्यक्ति' में'। 'कहानी की कला' में कथाकार (कथा-वाचक) पाठक से पूछता है- 'क्या मेरे पात्र का अतिरिक्त भाव से क्लान्त होना आपकी सामान्य स्वाभाविक संवेदना पाने के लिए जरूरी है?' 'सेब' कहानी का कथा-वाचक कहता है- ''यह स्वाभाविक ही था कि मैं अपमानित अनुभव करता कि मैं तो- जैसाकि मुझे बचपन से सिखाया गया है, दुःखी जनों के प्रति आर्द्र होना -उस पर तरस खा रहा हूँ, और वह मेरी अनदेखी कर रही है, परन्तु मुझे कोई अपमान नहीं मालूम हुआ, क्योंकि मुझे उसका स्वाभिमान अच्छा लगा।'', 'मेरे और नंगी औरत के बीच' का 'मैं' आत्म-प्रश्न करता है- ''मैं इसे कम्बल क्यों देना चाह रहा हूँ? क्या मुझे इस पर दया आ रही है, क्योंकि इसके पास नहीं है और मेरे पास है? सावधान, मैंने अपने को पिछली कहानियों की याद दिलाई- एक मानव को दूसरे पर दया करने का क्या अधिकार है? प्यार मैं कर सकता हूँ, पर क्या मैं सचमुच प्यार कर रहा हूँ, दया बिल्कुल नहीं? क्या मैं विश्वास से कह सकता हूँ?''। 'एक छोटी-सी यात्रा' का कथा-वाचक अखबार बेचने वाले लड़के पर दया करने के आनन्द से वंचित रह जाने पर स्वीकार करता है- ''मैंने लम्बी सांस ली और धन्यवाद दिया कि मैं बच गया।'' ये कहानियां दया-सहानुभूति को संशय की दृष्टि से देखती हैं। इनके कई पात्र अपने इन भावों को प्रश्नांकित करते हुए यहां देखे जा सकते हैं।

प्रस्तुत कहानी में चिड़िया के संघर्ष के प्रति 'मैं' की प्रतिक्रिया उन दोनों के बीच बनते हुए एक नये सम्बन्ध का संकेत करती है। हिन्दी कहानी में 'मैं'' जैसी यह भौतिक तटस्थता कथा-नायक जैसे किसी चरित्र के सन्दर्भ में पहली बार सामने आ रही थी। पूर्व कथा-परम्परा में ऐसा नहीं घटित हो सकता था। वहां यह घटना होती, तो कथा-वाचक 'मैं' एक द्वन्द्वमुक्त दया-भाव, करूणा एवं सहानुभूति के साथ चिड़िया को कोलतार से बाहर निकालने के प्रयत्नों में सम्मिलित हो चुका होता। किन्तु, यहां वह चिड़िया के मुक्ति-संघर्ष का भावुकता विहीन द्रष्टा है। वह चिड़िया के स्वयं के प्रयत्नों से स्वतंत्र होने का पूरा सम्मानजनक अवसर देता है और किसी भी किस्म के दया-भाव को चिड़िया की स्वतंत्र सत्ता की गरिमापूर्ण स्वीकृति का निषेध मानता है। वस्तुतः कहानी की मूल संवेदना यहीं, इसी जगह, कथा-वाचक के इस विचार और व्यवहार में अवस्थित है। चिड़िया की मुक्ति-प्रक्रिया केवल एक घटना या दृश्य है, कथा-वाचक और चिड़िया के बीच निर्मित होता हुआ यह नया सम्बन्ध उस घटना या दृश्य को एक 'कहानी' या 'रचना' में रूपान्तरित कर देता है। कहानी-संग्रह 'जो आदमी हम बना रहे हैं' की भूमिका में व्यक्त रघुवीर सहाय का यह विचार उनकी इस कहानी की दृष्टि एवं संवेदना को स्पष्ट करता है- ''जो आदमी हम बना रहे हैं, वही परिवर्तन करेगा, हमारी कहानी का नायक, उसकी जगह उसका काम करने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जायेगा।'' इस विचार-सूत्र के सहारे 'एक जीता-जागता व्यक्ति' की अर्थ-संरचना में प्रवेश का मार्ग दिखता है। कहानी का नायक अर्थात् कथा-वाचक 'मैं' चिड़िया के संघर्ष में उसका स्थानापन्न नहीं बनाया जा सकता। कहानी की रचना-प्रक्रिया में पहले से ही रघुवीर सहाय के लिए यह स्पष्ट है कि विपरीत परिस्थितियों के विरूद्ध संघर्ष को परिणति तक पहुँचाने का काम चिड़िया को स्वयं करना है, कथा-वाचक (कथा-नायक) को नहीं। नायक को किसी-भी प्रकार के सहयोग, सहानुभूति तथा हस्तक्षेप से बाहर रखकर कहानीकार दया-सहानुभूति के मूल्यों के निषेध और संघर्ष के विकल्प के चयन की स्वतंत्रता का तर्क रचता है, साथ ही इस विचार के प्रतिपादन का भी प्रयत्न करता है कि पीड़ितों के संघर्षों से ही उनकी मुक्ति के द्वार खुल सकते हैं, बाह्य शक्तियों की सहानुभूति और दया से नहीं। रघुवीर सहाय

के कहानी संग्रह 'जो आदमी हम बना रहे हैं' के शीर्षक के साथ यदि प्रस्तुत कहानी 'एक जीता-जागता व्यक्ति' की अन्तर्वस्तु को मिलाकर देखें, तो इसका अर्थ-मर्म खुलता नज़र आता है। रघुवीर सहाय की मूल चिन्ता में एक नये मनुष्य की रचना की समस्या शामिल है। वे एक लोकतांत्रिक समाज के भीतर उसके अनुरूप आदमी का व्यक्तित्व बनाने की कल्पना करते हैं। इस कहानी की संघर्षशील चिड़िया अपने प्रतीकात्मक अर्थ में 'एक जीता-जागता व्यक्ति' ही है, जो रघुवीर सहाय की कल्पना और आकांक्षा का मनुष्य है। यह एक ऐसा मनुष्य है, जो अपने स्वाभिमान एवं गरिमा की रक्षा करते हुए स्वतंत्रता जैसे मूल्य के लिए संघर्ष का महत्व जानता-पहचानता है।

13.7 स्वतंत्रता और समानता का अस्तित्ववादी पाठ

रघुवीर सहाय के विचार और साहित्य पर 'अस्तित्ववाद' के प्रभाव का कोई उल्लेख नहीं दिखता। न तो स्वयं रघुवीर सहाय के आत्म-वक्तव्य में और न ही उनके साहित्य के विश्लेषण-मूल्यांकन में। किन्तु, ध्यान दिया जाय तो उनकी प्रस्तुत कहानी का एक अस्तित्ववादी पाठ भी निर्मित होता हुआ दिख सकता है। यह इस कहानी की व्याख्या की एक भ्रान्त दिशा भी हो सकती है- इस आशंका के कारण इसे इस दृष्टि से देखे जाने का प्रस्ताव न करना कदाचित् उचित न होगा।

इस कहानी में जिस तरह अहं, अस्तित्व, स्वतंत्र जैसे पदों का कई बार प्रयोग किया गया है, वह सामान्य-सा नहीं लगता। इन्हें लेखन और चिन्तन के क्षेत्र में एक विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ प्राप्त है। अस्तिववादी विचार-दर्शन और साहित्य-सृजन के सन्दर्भ में नयी कविता और नयी कहानी के दौर तक अत्यन्त चर्चित हो चुके ये अवधारणात्मक प्रत्यय रघुवीर सहाय द्वारा यदि व्यवहार में लाये गये, तो निश्चय ही इनके निहितार्थ ढूँढे जाने चाहिए। इन शब्दों में ही नहीं, इस कहानी के वर्णन और संवादों में भी इस प्रकार की अर्थ-छायाएं मौजूद दिखती हैं। इन्हें स्पष्ट किये बिना कहानी के दार्शनिक मंतव्य तक की यात्रा कठिन है। कहानी में कथा-वाचक अपने मित्र से कहता है- ''लोगों को ही देखो, क्या यह कम रोचक है कि कितनी भीड़ है और सब अपने-अपने रास्ते जा रहे हैं, और किसी को परवाह नहीं है कि मैं क्या कर रहा हूँ, क्योंकि मैं उन्हें देखता हूँ पर हस्तक्षेप नहीं करता। देखो न, इस तरह मुझे भी औरों के साथ एक अस्तित्व मिल जाता है और वे सब ज्यादा-से-ज्यादा स्वतंत्र रहते हैं, क्योंकि कम-से-कम दखल देते हैं।'' दूसरों में हस्तक्षेप न करना उनके अस्तित्व और स्वतंत्रता का प्रबल समर्थन है- इस अस्तित्ववादी विचार की स्पष्ट अनुगूंज इस संवाद में अनुभव की जा सकती है। कहानी में एक जगह कथा-वाचक के मन में यह विचार आता है कि वह आगे बढ़े और चिड़िया को कोलतार से बाहर निकाल दे। परन्तु तत्क्षण यह विचार अपनी दिशा बदल देता है- ''क्या वह खुद कोशिश नहीं कर रही है, उसे अपने-आप करने न दूँ? मैं समझ सकता हूँ कि खुद कोशिश करने का क्या अर्थ होता है..............वह इस समय एक महत्वपूर्ण संघर्ष कर रही है, जैसे उसने जरूरी समझा है और जैसे वह ही कर सकती है।'' यहां यह स्पष्ट करना जरूरी नहीं कि निर्णय की स्वतंत्रता और अपने 'होने' को प्रमाणित करने की व्यक्तिगत कोशिश ही मनुष्य को अस्तित्ववान बनाती है। यदि मनुष्य अपने जीवन के बारे में लिये जाने वाले निर्णय और उसकी दिशा में कार्य करने के लिए स्वतंत्र नहीं है, तो अस्तित्ववान नहीं है। अर्थात् अस्तित्व और स्वतंत्रता दोनों एक साथ ही सम्भव हैं, इनमें से किसी एक का भी निषेध दूसरे को भी समाप्त कर देता है। यह अस्तित्ववाद का अत्यन्त सुपरिचित दार्शनिक सन्दर्भ है। इसके अनुसार स्वतंत्रता और समानता के सम्बन्ध भी अविभाज्य हैं। चिड़िया की स्वतंत्रता यदि एक मूल्य है, तो कथा-वाचक के साथ बनने वाले उसके सम्बन्ध की प्रकृति भी उसकी स्वतंत्रता का पोशक ही है। यह समानता के सम्बन्धों में ही

सम्भव है, इसीलिए इस कहानी में दया और सहानुभूति के भाव-सम्बन्धों का निशेध किया गया है। इस कहानी के अस्तित्ववादी पाठ में एक अन्य व्यंजना की ओर भी ध्यान जाता है। इस दर्शन के अनुसार केवल मनुष्य ही अस्तित्ववान हो सकता है, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और अन्य जड़ पदार्थ नहीं; क्योंकि अपने बारे में निर्णय का विवेक और उसके अनुरूप कार्य की क्षमता केवल मनुष्य में होती है, अन्य में नहीं। इस कहानी में अपने परिवेश और परिस्थितियों से बाहर निकलने, अपनी स्वतंत्रता के लिए निर्णय और उसके अनुरूप व्यक्तिगत संघर्ष का दृश्य-सन्दर्भ एक मनुष्य से नहीं, चिड़िया से जुड़ा है। इसका निहितार्थ क्या हो सकता है? दार्शनिक अर्थों में जो अस्तित्ववान नहीं है, उस चिड़िया के अपने अस्तित्व और स्वतंत्रता के लिए किये जा रहे प्रयत्नों के बहाने मनुष्य के जीवन-संघर्ष के महत्व की ओर ध्यान आकृष्ट करने की प्रतीकात्मक पद्धति के रूप में इसे ग्रहण किया जाना चाहिए। 'एक जीता-जागता व्यक्ति' ही अस्तित्ववान हो सकता है और जो संघर्ष कर रहा है, वही एक जीता-जागता व्यक्ति है- इस अस्तित्ववादी अर्थ में इस कहानी की चिड़िया का एक अस्तित्व है और वही 'जीता-जागता व्यक्ति' है।

एक ऐसे रचना-समय में रघुवीर सहाय की इस कहानी का मर्म समझ में आता है, जहां कुण्ठा, निराशा, निष्क्रियता, संत्रास, मृत्युबोध आदि के चित्रण का वातावरण बना हुआ था। कहीं आधुनिक जीवन की नयी प्रवृत्तियों के नाम पर, तो कहीं अस्तित्ववाद के प्रभाव के नाम पर रचना और आलोचना में समर्थन और विरोध के विचार लगातार सामने आ रहे थे। ऐसे समय और वातावरण में यदि जिजीविषा और संघर्ष के चित्र अंकित किये जाए, तो इसे अभिप्रायपूर्ण माना जाना चाहिए। अस्तित्ववाद के स्वस्थ विचार-सूत्रों के सहारे अस्तित्ववाद की रूग्ण-व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के प्रतिवाद के रूप में इस कहानी का एक पाठार्थ सम्भव है।

13.8 संरचना और भाषा

नयी कहानी संवेदना के साथ संरचना और भाषा के सन्दर्भ में भी अपने पहले की कहानी से अलग थी। इसके बारे में कहा गया कि यह अधिक सघन और जटिल है। कथावस्तु, चरित्र-निरूपण एवं तनावपूर्ण कथान्त जैसे रचना-तत्व अब उसके लिए उतने महत्वपूर्ण नहीं रहे। जीवन की एक छोटी-सी घटना, एक मनोदशा, एक संवेदना, एक अनुभूति अब नयी कहानी के केन्द्र में हो सकती थी।

रघुवीर सहाय की इस छोटी-सी कहानी की संरचना का महत्व 'नयी कहानी' के इस चरित्र के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। छोटी-सी घटना, रास्ते चलते दिख जाने वाला एक साधारण-सा दृश्य, एक अनुभूति, एक संवेदना-कहानी की पूरी वस्तु-सम्पदा बस इतनी-सी। 'एक जीता-जागता व्यक्ति' की संरचना अपनी पूर्व परम्परा की कहानियों की उस संरचना से भिन्न है, जिसमें कहानी-कला के पुराने तत्त्वों की प्रमुख भूमिका होती थी और उनके आधार-संयोजन में एक कहानी निर्मित हो जाती थी। यह कहानी एक नयी रूप-संरचना में आकार ग्रहण करती है। कहानी की नयी संरचनाओं का अभ्यस्त पाठक इसके साथ तादात्म्य तो स्थापित कर लेता है, किन्तु जो अभ्यस्त या परिचित नहीं है, उसके लिए यह कहानी पाठ-प्रक्रिया और बोध में असुविधाएं पैदा करती है। उसे कथावस्तु और चरित्र के साथ घटनाओं की गति तथा आकस्मिकता का वह उदग्र औत्सुक्य इसके भीतर से उपजता हुआ नहीं प्राप्त होता, जो पहले की कहानियों से सहज ही उपलब्ध था। ऐसी ही कहानियों के दृष्टिगत कभी श्रीपत राय (कहानी : नववर्षांक-1956) ने कहा था- ''बीच-बीच में मुझे सन्देह होने लगता है कि कहीं मैं समय की गति के पीछे तो नहीं हूँ और इस कारण मुझे हिन्दी कहानी में वह उन्नति नहीं परिलक्षित हो रही है, जिसकी आशा करनी चाहिए। यह स्वीकार करने में मुझे आपत्ति नहीं है कि कहानी का स्वरूप बदल

रहा है और मैं शायद अपने पुराने संस्कारों के कारण कहानी से वह मांग कर रहा हूँ जो आज उसका लक्ष्य ही नहीं है।'' रघुवीर सहाय की यह कहानी भी नये पाठकीय संस्कार की मांग करती है।

एक अत्यन्त लघु आकार की कहानी होने के कारण इसकी संरचना सघन और एकाग्र है। आकार की लघुता एवं संक्षिप्तता के कारण ऐसी कहानियों में कथाकार को प्रसंगों और विवरणों के विस्तार में जाने का अवसर नहीं होता। इस बिन्दु पर अनेक कहानीकारों में असावधानियों और विचलनों के उदाहरण मिलेंगे। कथावस्तु के विन्यास के सन्तुलन का विवेक जहां नहीं दिखता है, कहानी अनावश्यक स्फीति के कारण अपनी सीमाएं उद्‌घाटित करने लगती है। अपेक्षित एवं अनपेक्षित के बीच का अन्तरविवेक कहानीकार के रचना-कौशल की महत्वपूर्ण शर्त है, जो इस कहानी में पूरी होती हुई साफ नज़र आती है। यहां कहानी की मूल संवेदना सान्द्र-सघन रूपाकार में कहानी के केन्द्र में उपस्थित है, बिना किसी विचलन और स्फीति के। नामवर सिंह ने रघुवीर सहाय की छोटे आकार की कहानियों की उत्कृष्टता की चर्चा की है। लघु संरचना की कहानियों के पक्ष में तर्क देते हुए उन्होंने कहा है- ''क्या करेगा कोई घटनाओं का लम्बा सिलसिला लेकर? मुख्य प्रश्न तो अर्थ हैः घटना का अर्थ, अनुभव का अर्थ, किसी के ज़बान से निकले हुए मामूली से एक शब्द का अर्थ, किसी के चेहरे पर उभरी हुई एक हल्की-सी रेखा का अर्थ! हो सकता है कि इन संकेतों में कोई गूढ़ कहानी छिपी हुई हो। घटनाओं की भीड़-भाड़ में ये छोटे-छोटे संकेत प्रायः बड़े-बड़े सत्य को प्रकट कर देते हैंः जैसे घुप्प अंधकार में सहसा जुगनू की चमक!''

यह कहानी गहरे संकेतों की अर्थपूर्ण संरचना है। प्रच्छन्न और अन्तर्निहित संकेत-पद्धति पर ध्यान न जाय, तो यह साधारण रेखाचित्र या संस्मरण प्रतीत होगा अथवा अस्पष्ट आशयों वाली थोड़ी उलझी हुई कहानी। नयी कहानी के दौर की अधिकांश कहानियों में संकेतों की लाक्षणिक भाषा के उपयोग की कला के साक्ष्य मिल जायेंगे। सांकेतिकता के प्रति यदि रूपवादी आग्रह न हों, तो यह कहानी के अर्थ-प्रभाव को तीक्ष्णता और गहराई प्रदान करती है। कहानी अपने अर्थ-संकतों से ही विशिष्ट बनती है। जीवन-यथार्थ, अनुभूतियों एवं मानवीय परिस्थितियों के वर्णित परिदृश्य के भीतर से किसी गहरे अभिप्राय के संकेत यदि कहानी की संरचना में विन्यस्त नहीं हैं, तो वह एक सफल और सार्थक कहानी बन पायेगी, इसमें सन्देह है। यह संकेत ही है, जो कहानी को किसी घटना-प्रंसग का स्थूल विवरण बन जाने से बचाता है। रघुवीर सहाय ने छोटी संरचना की इस कहानी में संकेतों की जिन युक्तियों का प्रयोग किया है, वे कहानी के मूल मंतव्य तक पहुँचाने का मार्ग दिखाते हैं। कोलतार में फँसी हुई चिड़िया केवल चिड़िया नहीं है। वह आज के समय और व्यवस्था के दुश्चक्रों में फँसा हुआ सामान्यजन है, वह उससे मुक्त होने के प्रयत्नों में है। रघुवीर सहाय ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ इस संकेत को विन्यस्त किया है। एक जगह चिड़िया की कोशिशों को देखकर कथा-वाचक का मित्र कहता है- ''देखो यार, बिल्कुल आदमियों की तरह कर रही है।'' कोलतार, सड़क, कौए, सारी गतिविधियाँ- ये सभी जीवन की त्रासदी और उससे मुक्ति प्राप्त करने के प्रयासों को अपनी सांकेतिकता में ही अर्थवान बनाते हैं। इस कहानी में संवादों या वर्णन के अनेक अंश हैं, जिनके संकेत समझे बिना कहानी का प्रतिपाद्य स्पष्ट नहीं हो सकता- 'चिड़िया के लिए कोई उम्मीद न थी। एक पंजा जरा-सा हुमसता तो दूसरी ओर जोर पड़ता और वह फिर फँस जाती', 'जकड़े हुए पंजों पर उसका शरीर दायें से बायें पागल की तरह डोलने लगा'- क्या इसे सामान्यजन की मुक्ति की सभी राजनीतिक दिशाओं की विफलता और व्यर्थता के अर्थसंकेत के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता! 'चिड़िया ने कातर आँखों से मुझे देखा। उनमें केवल अविश्वास था, उसने चोंच खोल दी और बुरी तरह डरकर वह

छटपटाई'- यह आश्वासनों और घोषणाओं से लगातार छले गये, व्यवस्था के षड्यंत्रों के शिकार आम आदमी की वह प्रतिक्रिया है, जिसमें मुक्ति के किसी-भी बाहरी प्रयत्न के प्रति भरोसे की जगह सन्देह का भाव होता है। यह कहानी अपनी समग्र संरचना में ही सांकेतिक है। इस कहानी की रचना-प्रक्रिया में संकेतों के प्रयोग कथ्य-प्रभाव बढ़ाने के प्रयोजन से नहीं किये गये हैं। ये संकेत यहाँ रूप के उपकरण नहीं हैं। वस्तुतः अन्तर्वस्तु की संरचना के अनिवार्य घटक के रूप में इनका महत्त्व समझा जा सकता है। कथ्य की प्रभावनिर्मिति के पूर्व कथ्य की निर्मिति का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। यहाँ कथ्य, संवेदना के आभ्यन्तरीकरण की प्रक्रिया ही सांकेतिक है। इस कहानी की पूरी संरचना अन्तर्वस्तु की तार्किक संगति में है। यह केवल रूप की संरचना नहीं है, यह अन्तर्वस्तु की भी संरचना है। इस कहानी के विन्यास में, भाषान्तरालों में कहानी के अर्थ-तन्तु मौजूद हैं।

रघुवीर सहाय की कहानियों में बिम्बधर्मी भाषा का सर्जनात्मक उपयोग किया गया है। कहानी की दृष्टि और संवेदना के अनुरूप ऐसी भाषा के सृजन के सार्थक साक्ष्य यहाँ देखे जा सकते हैं। रंगों, ध्वनियों आदि के ऐन्द्रिक संवेदनाओं से सम्बद्ध बिम्बों के प्रयोग ने कहानी का शिल्प-प्रभाव भी विकसित किया है और अर्थ-प्रभाव भी। ये बिम्ब केवल भाषा का ऐन्द्रिक परिवेश ही नहीं निर्मित करते, संवेदना को भी अधिक ग्राह्य एवं सम्प्रेषणीय बनाते हैं-''मैंने मौन रहकर उसे आँख-भर देखा। जैसे सम्मोहित होकर वह एक पल थिर आंखों से मुझे देखती रही, फिर कांपकर ऐसे फड़फड़ाई जैसे यह उसका आखिरी फड़फड़ाना हो। फिर उसने पंख खोल दिए और उन्हें तान दिया। अचानक वह छूट गयी।'' यह भाषा की बिम्बधर्मी संरचना का उत्कृष्ट काव्यात्मक उपयोग है। नये यथार्थ को नयी रूप-प्रविधि से अधिक संवेदनक्षम बनाने की प्रक्रिया में कहानी ने कविता से अनेक स्थलों पर आत्मीय साहचर्य स्थापित किया है। परिवेश के प्रगाढ़ ऐन्द्रियबोध की सृष्टि के लिए एक सक्रिय-स्फूर्त बिम्ब-भाषा की अनोखी पद्धति कविता के भीतर से ही उपलब्ध की जा सकती है। और कहानीकार रघुवीर सहाय की तरह यदि कवि भी हो, तब!

रघुवीर सहाय अपनी इस कहानी में और अन्य कहानियों में भी जो कथ्य प्रस्तुत कर रहे थे, उसके लिए पहले की कथा-भाषा पर्याप्त नहीं थी। जिस सूक्ष्म विचार-पूर्ण और गहन जीवन-संवेदना को वह अपनी इस कहानी में व्यक्त करना चाह रहे थे, वह कुछ भिन्न तरह की भाषा में, कुछ अलग किस्म की संरचना और शिल्प-कौशल से ही सम्भव हो सकता था। इसके लिए उन्हें एक नयी भाषा, नये रूप को अन्वेषित करना था। रघुवीर सहाय इस प्रकार दो मोर्चे पर प्रयत्नशील दिखते हैं- एक, कथ्य और संवेदना का, दूसरा अभिव्यक्ति का। यह प्रयत्न वस्तुतः हर सर्जक रचनाकार को करना ही होता है। रघुवीर सहाय भी करते हैं और कुछ इस तरह कि वे बिल्कुल एक भिन्न और विशिष्ट रूप-संरचना तथा भाषा के कहानीकार के रूप में सामने आते हैं। विचार एवं संवेदना को उपलब्ध कर पाने की अन्तःप्रक्रिया भाषा के ही भीतर सम्भव होती है, इसलिए यह कहानी की समग्र संरचना से जुड़ा हुआ सन्दर्भ है। रघुवीर सहाय इस सन्दर्भ में बिल्कुल सजग और समर्थ दिखते हैं।

13.9 सारांश

नयी कहानी आन्दोलन अपनी पूर्ववर्ती कहानी-परम्परा से एक नया प्रस्थान था। स्वातंत्र्योत्तर जीवन-यथार्थ के भीतर से उभर रहे नये प्रश्नों और नयी चिन्ताओं का आधार ग्रहण करते हुए इस आन्दोलन ने कहानी के इतिहास में न केवल रचनात्मक हस्तक्षेप किया, अपितु अनेक महत्वपूर्ण कृतियों से पूरा परिदृश्य ही बदल दिया। रघुवीर सहाय इसी दौर के एक विशिष्ट कहानीकार हैं। 'एक जीता-जागता व्यक्ति' नयी संवेदना एवं संरचना की उनकी

एक महत्वपूर्ण कहानी है।

रघुवीर सहाय की यह कहानी यथार्थ और जीवन-मूल्यों के परिवर्त्तन के उस दौर में कुछ नये मूल्यों की प्रतिष्ठा का एक प्रयास है। यथार्थ के स्थूल कोलाहल में थोड़े दूरस्थ-से, अलक्षित-से जीवन-सत्यों को पकड़ लेने की दृष्टि रघुवीर सहाय की कविताओं-कहानियों में दिखती है। प्रस्तुत कहानी ऐसे ही एक मूल्यवान जीवन-सत्य को उपलब्ध करती है। इस कहानी की संवेदना का व्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वाभिमान-भावना के साथ दुर्लभ साहचर्य है। व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसका सम्मान जीवन के बहुमूल्य सन्दर्भ हैं। इनके बिना किसी मानवीय समाज-संस्कृति की रचना की कल्पना असम्भव है। मनुष्य होने का अर्थ आत्म-सम्मान की प्रबल स्वीकृति भी है। 'एक जीता-जागता व्यक्ति' इस बोध और मूल्य के बिना सम्भव नहीं है। यथार्थ के जीवन-विरोधी रूपों से संघर्ष की दशाओं में इस मूल्य की परीक्षा होती है। कहानीकार ने कोलतार में फंसी हुई चिड़िया के दृश्य में सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ के भयावह संकटों और मनुष्य के सामने खड़ी कठिन चुनौतियों को रूपायित किया है। चिड़िया के प्रतीक में इस कहानी का जीता-जागता व्यक्ति संघर्ष के रास्ते से होकर अपने को स्वाधीन कराता है। प्रस्तुत कहानी संवेदना के तनावपूर्ण अन्तःसम्बन्धों में विकसित होती है। इसके दो ध्रुवान्त हैं। एक पर व्यथा है, तो दूसरे पर एक किस्म की निष्क्रियता। एक भोक्ता है, तो दूसरा उसका निस्संग द्रष्टा। ऊपरी तौर पर एक अकर्मक साक्षी-भाव इस कहानी की संवेदना का सबसे कमजोर पक्ष दिख सकता है, किन्तु अन्तः प्रक्रिया में यहां संवेदना का वह रूप सक्रिय है, जिसके पीछे एक नयी नैतिक मूल्य-प्रणाली का बल है। सहानुभूति और सहयोग की पुरानी पारम्परिक नैतिकता से भिन्न वैयक्तिक प्रयत्नों की स्वाधीनता का यह गहरा आत्म-सम्मान विरल है। मृत्यु की स्थितियों के विरूद्ध जिजीविषा के संघर्ष की प्रतिष्ठा इस कहानी की शक्ति है।

यह कहानी यह भी स्थापित करती है कि मनुष्य की गरिमा का मूल्य चुकाकर उसकी स्वतंत्रता की प्रतिष्ठा नहीं की जा सकती। मनुष्य की गरिमा और स्वतंत्रता, दोनों के लिए किये जाने वाले संघर्षों में गहरा सम्बन्ध है। कहानी बताती है कि जहां करूणा और सहानुभूति की स्थितियां बनी हुई हैं, निश्चय ही वह समानता पर आधारित लोकतांत्रिक समाज नहीं हो सकता। दया के भाव असमानताओं की उपज हैं, इसलिए अवांछनीय हैं।

'एक जीता-जागता व्यक्ति' में जिस घटना-प्रसंग का वर्णन किया गया है, वह अपने स्वरूप में कोई असाधारण नहीं है। ऐसे दृश्य स्थूलतः कहीं भी दिख सकते हैं। सामान्यतः यह किसी कहानी का विषय भी नहीं लगता। किन्तु इस साधारण-से दृश्य के एक रचना में रूपान्तरित हो जाने की सम्भावना को कहानीकार घटित करता है। यही रघुवीर सहाय का अपना हस्तक्षेप है। यह हस्तक्षेप एक नितान्त परिचित और साधारण प्रसंग के भीतर से असाधारण के अविष्कार का है। यह व्यवस्था के भीषण अमानवीय चरित्र, मनुष्य की जिजीविषा और संघर्ष-चेतना तथा स्वतंत्रता एवं समानता के मूल्यों का आविष्कार है। कहानीकार ने इसके लिए एक नया शिल्प भी आविष्कृत किया है। एक नयी दृष्टि-संवेदना के लिए एक नयी कथा-संरचना। इस कहानी में जिस परिवेश और दृश्य की योजना की गयी है, वह कथा-शिल्प की एक नयी कल्पनाशीलता की ओर संकेत करती है। सामान्यतः मुक्ति, संघर्ष, करूणा, सहानुभूति, आकांक्षा, प्रयत्न के प्रसंगों के बनने वाली समस्या के चित्रण के लिए एक सामाजिक-मानवीय जीवन-व्यापार और उससे सम्बद्ध परिवेश की कल्पना कहानीकार के लिए ज्यादा सहज-स्वाभाविक होती है। परन्तु, रघुवीर सहाय सड़क पर कोलतार में फंसी एक चिड़िया और उसके मुक्ति-प्रयत्नों से युक्त जिस परिवेश की रचना करते हैं, उससे इस कहानी को एक नयी संरचना उपलब्ध होती है।

13.10 अभ्यास

1. नयी कहानी आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में रघुवीर सहाय की कथा-दृष्टि के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।
2. रघुवीर सहाय की कहानी 'एक जीता-जागता व्यक्ति' के कथ्य-शिल्प का विवेचन कीजिए।
3. 'रघुवीर सहाय की कहानी 'एक जीता-जागता व्यक्ति' एक नये मनुष्य की रचना की आकांक्षा की अभिव्यक्ति है' - इस कथन पर विचार कीजिए।
4. रघुवीर सहाय की कहानी 'एक जीता-जागता व्यक्ति' में रूपायित जीवन-यथार्थ के स्वरूप का मूल्यांकन कीजिए।
5. 'एक जीता-जागता व्यक्ति' जीवन-मूल्यों के विधि-निषेध की कहानी है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 14 सुख : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 लेखक का परिचय

14.3 साठोत्तरी कहानी

14.4 जनवादी कहानी और काशीनाथ सिंह

14.5 सुख : पाठ-बोध और प्रक्रिया

14.6 सुख : पाठ के बाद

14.7 भाषा-शैली

14.8 सारांश

14.9 अभ्यास

14.0 उद्देश्य

यह एम.ए. हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल पाठ्यक्रम 'हिन्दी कहानी' से सम्बन्धित चौदहवीं इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप साठोत्तरी कहानी के एक महत्वपूर्ण लेखक के रूप में काशीनाथ सिंह से परिचय प्राप्त करेंगे/करेंगी। उनकी एक सशक्त कहानी 'सुख' पाठ हेतु आपके सामने है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- साठोत्तरी कहानी की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- जनवादी कहानी और काशीनाथ सिंह से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- 'सुख' कहानी के माध्यम से हिन्दी कहानी की तत्कालीन विशिष्टताओं से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- 'सुख' कहानी में अभिव्यक्त प्रतीकों-संदर्भों को जान सकेंगे/सकेंगी;
- 'सुख' कहानी के आधार पर काशीनाथ सिंह की विशिष्ट भाषा-शैली से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।

14.1 प्रस्तावना

काशीनाथ सिंह की पहली कहानी 'संकट' 'कृति' पत्रिका में सितम्बर, 1960 में प्रकाशित हुई थी। यह 'नयी कहानी' आंदोलन का दौर था। आप जानते हैं कि जिस काल-खण्ड की कहानी को 'नयी कहानी' कहा गया है उसे मोटे तौर पर सन् 1954 से 1963 की सीमाओं में बाँधा जाता है। लेकिन यह भी सच है कि 1959-60 के आस-पास कहानीकारों की एक नई पीढ़ी उभर रही थी। ज्ञानरंजन, प्रबोध कुमार, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, प्रयाग शुक्ल, विजय चौहान, काशीनाथ सिंह इस उभरती पीढ़ी के प्रतिनिधि कहानीकार थे। नयी कहानी की एकरसता ने इनके लिए आधारभूमि तैयार की। काशीनाथ सिंह की उच्च शिक्षा के समय यद्यपि नयी कहानी फल-फूल रही थी लेकिन एक विद्यार्थी के लिए उसकी

खूबियों और कमियों को जाँचना-परखना और नए नजरिये का विकास करना बनारस के तत्कालीन माहौल में संभव था। बनारस तब अपनी साहित्यिक-सांस्कृतिक पहचान में अलग शहर था।

परन्तु 1960 के बाद हालात बदलने लगे थे। बदलाव सिर्फ बनारस में ही नहीं हो रहा था, पूरा देश बदल चुका था। ज्ञान-विज्ञान की प्रगति, सामाजिक-आर्थिक विकास, उच्च शिक्षा के खुलते नए दरवाजे, महिलाओं की समाज में बदलती भूमिका आदि ऐसे परिवर्तन थे जो लोगों को महसूस हो रहे थे; लेकिन बेरोजगारी अब भी बनी हुई थी, आज़ादी के बाद की तमाम आकांक्षाएँ धूमिल पड़ चुकी थीं, 1962 के चीन युद्ध और बाद में नेहरू जी के निधान से स्वप्नजीवी राजनीति का अंत हो चुका था। पीढ़ियों में द्वन्द्व की शुरूआत हो चुकी थी और नगरीकरण की मार देशज संवेदनाओं पर पड़ रही थी। उच्च शिक्षा और रोज़गार के लिए लोग शहर आने को बाध्य थे और शहर अपने उपनाम 'बाजार' से विभूषित होने लगे थे। बाज़ार ने पैसे का महत्व बढ़ा दिया था। भौतिकता की स्पर्धा ने भागदौड़, झूठ, मक्कारी, भ्रष्टाचार, अजनबीपन इतना बढ़ा दिया कि लोग अविश्वास की स्थिति से गुजरने लगे। अविश्वास और मूल्यहीनता ने समाज में विभेद पैदा किए, यहाँ तक कि परिवार टूटने लगे और रक्तसंबंधों में भी विश्वसनीयता के संकट खड़े होने लगे। निराशा के इस दौर में व्यक्ति आहत ही नहीं हुआ, टूटने भी लगा। इस टूटन ने उसे कुंठा, संत्रास दिए, चुप्पी दी और भाषा की सीधे-सीधे कहने की ताकत क्षीण कर दी। संकेत प्रबल होने लगे। शिल्प के स्तर पर भी कथ्य के साथ-साथ बदलाव हुए। ये बदलाव काशीनाथ सिंह की कहानियों में भी मिलते हैं।

14.2 लेखक का परिचय

काशीनाथ सिंह का जन्म बनारस जिले के जीयनपुर गाँव में 1 जनवरी 1937 को हुआ था। पिता नागर सिंह प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे और परिवार में खेती-किसानी होती थी। बचपन गाँव से पूरी तरह जुड़ा रहा। घरेलू कामों में हाथ बँटाते, कबड्डी और गुल्ली-डंडा जैसे खेल खेलते और फगुआ-कजरी के गीत सुनते बचपन बीता। दस साल के हुए तो देश को आज़ाद होते देखा। आरम्भिक शिक्षा गाँव के पास के विद्यालयों में हुई। उच्च शिक्षा के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 1955 में प्रवेश लिया और वहीं से बी.ए., एम. ए. तथा पीएच.डी. की। वहीं 'हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण' कार्यालय में 1962 से 1964 तक शोध-सहायक रहे। 1965 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए, फिर वहीं से प्रोफेसर एवं अध्यक्ष पद से 1997 में सेवा मुक्त हुए।

सितम्बर 1960 में 'कृति' पत्रिका में पहली कहानी 'संकट' प्रकाशित हुई। फिर काशीनाथ सिंह ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। 'लोग बिस्तरों पर', 'सुबह का डर', 'आदमीनामा', 'नई तारीख', 'सदी का सबसे बड़ा आदमी', 'कल की फटेहाल कहानियाँ', 'प्रतिनिधि कहानियाँ' और 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' इनके चर्चित कहानी संग्रह हैं। इनकी सम्पूर्ण कहानियाँ 'कहनी उपखान' नाम से प्रकाशित हैं। 'घोआस' इनका चर्चित नाटक है और 'आलोचना भी रचना है' इनकी महत्वपूर्ण समीक्षा पुस्तक है। 'हिन्दी में संयुक्त क्रियाएँ' इनका शोध-ग्रंथ है। इन्होंने 'परिवेश' पत्रिका का संपादन किया था और आलोचक नामवर सिंह के पत्रों का संचयन/संपादन 'काशी के नाम' शीर्षक से प्रकाशित है। 'याद हो कि न याद हो', 'आछे दिन पाछे गए' और 'घर का जोगी जोगड़ा' इनके संस्मरण हैं। 'अपना मोर्चा', 'काशी का अस्सी' और 'रेहन पर रग्घू' इनके बेहद चर्चित उपन्यास हैं। 'रेहन पर रग्घू' पर इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला है। 'अपना मोर्चा' उपन्यास का जापानी एवं कोरियाई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। कई कहानियों के भारतीय और

विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। उपन्यास और कहानियों की रंग-प्रस्तुतियाँ भी खूब हुई हैं।

काशीनाथ सिंह एक जिन्दादिल लेखक के रूप में विख्यात हैं। बनारस उनमें एकदम से रचा-बसा है। इसीलिए वहाँ की भाषा-बोली और देशज संवेदनाएँ इनकी रचनाओं में जगह बनाती हैं। वे पचास साल से लिख रहे हैं और अब भी अपनी कलम के माध्यम से सक्रिय और तरोताजा हैं।

14.3 साठोत्तरी कहानी

साठोत्तरी कहानी अपने विभिन्न आंदोलनों के लिए जानी जाती है। अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समांतर कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी और समकालीन कहानी जैसे विभिन्न नाम हमें सुनाई पड़ते हैं। अकहानी के प्रमुख प्रवक्ता गंगाप्रसाद विमल माने जाते हैं। हालाँकि वे अकहानी को आंदोलन न मानकर एक दृष्टि मानते हैं। इंद्रनाथ मदान द्वारा संपादित 'हिन्दी कहानीः पहचान और परख' में वे लिखते हैं- 'अ-कहानी का संदर्भ इस दृष्टि से आंदोलन नहीं है, कोई मंच नहीं है तथा कोई विशेषण नहीं है। मूल्यांकन की दृष्टि से कथा के रचना-विधान का पृथक्कत्व स्पष्ट करने के लिए ही अ-कहानी का नामांकन किया गया हो-यह भी पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। वस्तुतः अ-कहानी कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा किसी तरह के मूल्य स्थापन का अस्वीकार है........' गंगाप्रसाद विमल इसे विश्वव्यापी संदर्भों में देखते हैं। फ्रांस में स्वीकृत एंटी-स्टोरी का इसे रूपान्तरण कहा जा सकता है। वे मानते हैं कि 'अकहानी' कहानी की धारणागत प्रतीति के सभी वर्गीकरणों, मूल्यांकन-आधारों और पूर्व समीक्षाओं को अस्वीकार करती है।' गंगाप्रसाद विमल, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी आदि अकहानी आंदोलन के प्रमुख कहानीकार हैं।

सचेतन कहानी की अवधारणा महीप सिंह ने प्रस्तुत की थी। 'आधार' के सचेतन कहानी विशेषांक में उन्होंने लिखा, 'सचेतन एक दृष्टि है। वह दृष्टि जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है। अपने संक्रांति-काल में चाहे हमें जीवन अच्छा लगे या बुरा लगे, चाहे उसे घूँट-घूँट पीकर हमें तृप्ति प्राप्त हो, चाहे नीम के रस की तरह हमें उसे आँखें मूँदकर निगलना पड़े परन्तु जीवन से हमारी संपृक्ति छूटती नहीं। कड़ुए घूँटों से घबड़ाकर जीवन से भाग खड़े होने की बात वैयक्तिक रूप में मानव इतिहास में अनेक बार दोहराई गई है और हर बार किसी-न-किसी प्रकार का दार्शनिक-बौद्धिक आधार देकर उसके औचित्य की स्थापना का प्रयास किया गया है। परन्तु मनुष्य की प्रवृत्ति जीवन से भागने की नहीं रही है। जीवन की ओर भागना ही उसकी नियति है.......' महीप सिंह इसे एक विचार प्रधान आंदोलन मानते हैं। वे सचेतन कहानी को जिन्दगी की स्वीकृति की कहानी मानते हैं। इसीलिए उसे ज्यॉ पाल सार्त्र के अस्तित्ववाद के सक्रिय और सकारात्मक पक्ष से जोड़ते हैं। महीप सिंह, मनहर चौहान, योगेश गुप्त, कुलभूषण आदि सचेतन कहानी के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है।

सहज कहानी अमृत राय ने शुरू की थी लेकिन उनके विचारों को अन्य कहानीकारों द्वारा रचनात्मक सहयोग नहीं मिला। 1970 तक आते-आते अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी आंदोलन क्षीण पड़ने लगे। 1972 के आस-पास 'सारिका' पत्रिका के लिए लिखी जाने वाली अपनी संपादकीय टिप्पणियों में कमलेश्वर ने 'समांतर कहानी' आंदोलन का सूत्रपात किया। कमलेश्वर ने वाद और पीढ़ीमुक्त कहानी से अपनी बात शुरू की क्योंकि आंदोलनों की गुटबंदी से लोग तंग आ चुके थे। प्रतिबद्धता से मुक्त होकर 'नए मनुष्य' और समाजवादी समाज की स्थापना करते हुए आम आदमी की चिन्ता को 'समांतर

कहानी' केन्द्र में रखती है। से.रा. यात्री, मेहरून्निसा परवेज़, जितेन्द्र भाटिया, इब्राहिम शरीफ, दामोदर सदन, स्वदेश दीपक, आलमशाह खान, निरूपमा सेवती, सुधा अरोड़ा आदि को 'समांतर कहानी' आंदोलन का कहानीकार माना जाता है।

'सक्रिय कहानी' आंदोलन का श्रेय श्री राकेश वत्स को जाता है। किन्तु यह आंदोलन भी 'सहज कहानी' आंदोलन की तरह नाम भर का आंदोलन रहा। इसीलिए इसका कोई व्यापक और स्थायी प्रभाव नहीं रहा। इन आंदोलनों के बाद इधर की पूरी कहानी को अब समकालीन कहानी कहा जा रहा है। इसमें तमाम कहानीकारों के नाम तेजी से उभर रहे हैं।

साठोत्तरी कहानी आंदोलनों में सर्वाधिक चर्चित और महत्वपूर्ण कहानी आंदोलन जनवादी कहानी आंदोलन था। एक ओर इसमें नयी कहानी आंदोलन के लेखक भी शामिल थे तो दूसरी ओर नए लेखक जुड़ रहे थे। काशीनाथ सिंह इसी आंदोलन के कहानीकार हैं। इसीलिए हम इसकी चर्चा अलग से कर रहे हैं।

14.4 जनवादी कहानी और काशीनाथ सिंह

काशीनाथ सिंह जनवादी कहानी के प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं। उनकी कहानियाँ जनवादी कहानी आंदोलन से जुड़ती हैं और उसके विकास की जमीन तैयार करती है। दरअसल जनवादी कहानी के सूत्र नयी कहानी आंदोलन के प्रगतिशील कहानीकारों से जुड़ते हैं। इनमें भीष्म साहनी, अमरकान्त, मार्कण्डेय और शेखर जोशी प्रमुख हैं। ये कहानीकार नयी कहानी आंदोलन के बाद साठोत्तरी कहानी के दौर में भी लेखन के क्षेत्र में डटे रहे और अपनी प्रगतिशील चेतना से लैस कहानियाँ लिखते रहे। जनवादी लेखक संघ की स्थापना (1982) के बाद जनवाद शब्द तेजी से चल पड़ा जो वास्तव में प्रगतिशील सरोकारों का ही प्रतीक है। यही कारण है कि युगीन संदर्भों को अपनी रचना में शामिल करते हुए उपर्युक्त चारो लेखक जनवादी कहानी का भी विस्तार करते रहे। यही नहीं, साठोत्तरी कहानी के अन्य आंदोलनों से प्रभावित हुए बिना इन्होंने अपनी कहानियों का केन्द्रीय तत्व जनवादी ही बनाए रखा और एक नये आंदोलन में शामिल नये कहानीकारों के लिए आधारभूमि तैयार की। ज्ञानरंजन, सतीश जमाली, रमेश उपाध्याय, मधुकर सिंह, इसराइल, विजयकान्त आदि काशीनाथ सिंह के साथ जनवादी कहानी के प्रमुख कहानीकार हैं।

अब आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि जब काशीनाथ सिंह की पहली कहानी 1960 में प्रकाशित हुई थी और जनवादी लेखक संघ की स्थापना 1982 में हुई तो क्या काशीनाथ सिंह की आरम्भिक कहानियाँ अकहानी आंदोलन से एकदम मुक्त हैं? इसके दो उत्तर हो सकते हैं- एक तो यह कि जब अकहानी के दौर में भी नयी कहानी आंदोलन के प्रगतिशील लेखक अपने को उससे मुक्त रखने में सफल रहे तो काशीनाथ सिंह उससे मुक्त होकर कहानियाँ क्यों नहीं लिख सकते थे? दूसरा यह कि- हाँ, काशीनाथ सिंह की आरम्भिक कहानियों में यह द्वन्द्व दिखता है। मधुरेश अपनी पुस्तक 'हिन्दी कहानी का विकास' में लिखते हैं- 'काशीनाथ सिंह भी सातवें दशक में उभर कर आये। वह वस्तुतः अकविता का दौर था और अ-कहानी आंदोलन भी उन्हीं स्थितियों का परिणाम था। यही कारण है कि और अनेक लेखकों की भाँति इन लेखकों की इस दौर की कहानियों में भी अकहानी के तत्वों को आसानी से देखा जा सकता है। काशीनाथ सिंह की कहानियों के पहले संग्रह 'लोग बिस्तरों पर' में इस द्वन्द्व को देखा जा सकता है।' लेकिन काशीनाथ सिंह जल्दी ही इस द्वन्द्व से निकल जाते हैं और 'आदमीनामा' का सफर तय करते हैं। अपनी कहानियों के संग्रह 'कहनी उपखान' में वे 'अपने पाठकों से कहते हैं- '......मेरी शुरूआत ही यहाँ से हुई थी कि महज लिखने के लिए मत लिखो। फालतू, बेमतलब और

भर्ती का तो कतई नहीं। नई कहानी हो या किसी दौर की कहानी-प्रवाह या कथाधारा में बहने के बजाय तैरना सीखो; डूब जाने के खतरे उठाकर भी तैरो, अपने हाथों-पैरों और विवेक के बलबूते, पीछे-आगे, अगल-बगल देखकर, सोच-समझकर; और अपनी ओर से कोशिश मैंने यही की।

मैं लिखता रहा, जिन दिनों हमारे साथी कथाकार चुप और बेबस थे, उन दिनों भी लिखता रहा। ऐसा संभव इसीलिए हुआ कि मैंने न तो कभी खुद को 'ड्राइंग रूम' या 'स्टडी रूम' तक सीमित रखा और न कभी 'समकालीन मुहावरों' के पीछे पड़ा। शायद इसी का परिणाम था कि मैं 'साठ' का कहानीकार होकर भी 'साठ' का नहीं रह सका। कभी तो बदलते समय के साथ मेरी कहानियाँ बदलीं और कभी कहानियों के बदलने के साथ समय की कहानियों का मिजाल बदला। कहने की जरूरत नहीं है कि 'जनवादी कहानी' की चर्चा जिन कहानियों से आरम्भ हुई थी, उन्हीं में 'मुसइ चा', 'सुधीर घोषाल', जंगल-जातकम्', 'लाल किले के बाज' जैसी कहानियाँ रही हैं। हालाँकि इस संदर्भ में 'चोट' और 'हस्तक्षेप' को भी अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए जो '70-71 में प्रकाशित हुई थीं।'

काशीनाथ सिंह के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि 1982 के पूर्व ही वे जनवादी कहानी के आरम्भ कर्त्ताओं में शामिल हो चुके थे। मई 1982 में अमरकंटक में आयोजित कहानी रचना शिविर में साहित्य और जनवादी लेखक के बारे में वे स्पष्ट करते हैं- 'मेरी जेहन में साहित्य मानवीय संवेदनाओं के घात-प्रतिघात की गतिशील प्रक्रिया का भाषा बद्ध इतिहास है। जनवादी लेखक का काम है उस गतिशील प्रक्रिया का जीवन्त बिम्ब प्रस्तुत करना जो पढ़ने वाले के मानसिक संसार में हलचल पैदा करे। इसकी पहली शर्त है रचना में पढ़े जाने का आकर्षण। आप चाहे जैसी क्रान्तिकारी वस्तु दीजिए, यदि वह पढ़ने के लिए आमंत्रित न कर सके, उत्साहित न कर सके, अपने को पढ़ डालने के लिए बाध्य न कर सके तो आप उसे बिसाती की तरह सिर और पीठ पर लादे या काँख में दबाए गली-गली घूमा कीजिए- उम्दा होगी, अपनी बला से, चाहे आप जितना 'वस्तुवाद' 'रूपवाद' चिल्लाया करें। दूसरी शर्त है, उस वस्तु की संवेदना को तीक्ष्णतम रूप में पाठक की चेतना के समस्त स्तरों पर फैला देना- इस कदर कि पढ़ने वाले को अहसास हो कि सच का सिर्फ एक रंग है। यह कोई सम्मोहन-क्रिया व्यापार नहीं है, यह सचेतन पाठक के लिए इस्तेमाल में लाई गई रचनात्मक क्षमता है जो एक लेखक से 'पत्रकार' होने की नहीं, कलाकार होने की माँग करती है।

काशीनाथ सिंह की कहानियों में यही ताक़त मौजूद है। आम जन की संवेदना को भरपूर तरजीह और भाषा का चुटीला प्रयोग उनकी सहज कहानियों में सम्मोहन जगाते हैं। वे देशज संवेदना को बोलचाल की सहज भाषा में जबरदस्त विस्तार देते हैं और साधारण जन के कहानीकार बन जाते हैं।

14.5 सुख : पाठ-बोध और प्रक्रिया

'सुख' काशीनाथ सिंह की बेहद महत्वपूर्ण कहानी है। नामवर सिंह 'कहानीः नयी कहानी' में नई संवेदना, नये नामों की चर्चा जब अन्तिम पृष्ठ पर करते हैं तो कुछ गिनी-चुनी कहानियों में 'सुख' का नाम लेते हैं। काशीनाथ सिंह भी मानते हैं कि 'यह कहानी मेरी ही नहीं, मेरे दौर के अलग मिजाज की शुरूआत थी।' (कहानी उपखान)

'सुख' कहानी का आरम्भ एकदम सीधा है- 'भोला बाबू को नौकरी से वापस आए हफ्ता भी नहीं हुआ था कि एक घटना हो गई।' यही घटना और उससे जुड़े संदर्भ सुख का विस्तार करते हैं, केन्द्रीय कथानक बनते हैं। घटना यह हुई कि- 'वे कमरे में पड़े अख़बार

पढ़ रहे थे। एक शाम खिड़की से कोई किरण आई और उनके गंजे सिर पर पड़ रही। जैसे वह किसी नन्हें बच्चे की हथेली हो, गरम और ग्ददेदार। भोला बाबू लेटे से बैठ गए। देखा, सूरज पहाड़ी के पीछे कहीं चला गया है और वह किरण उनके सिर पर ज्यों की त्यों रखी है।

वे उठे। उन्होंने सामने की दीवार पर हाथ रखा। कुछ क्षण पहले ललाई यहाँ भी ठहरी थी। हथेली ज़रा गरम लगी। .... वे तेज़ क़दमों से आगे बढ़े और चारदीवारी तक गए। फिर रूक गए। यहाँ से सूरज दिख रहा था- पहाड़ियों के कुछ ऊपर, बादलों के कहीं आसपास! ताड़ और बबूलों के बीच में। उन्होंने स्वयं पर निगाह डाली- मारकीन का सफ़ेद कुर्ता गुलाबी हो उठा था। वे मुस्कुराए, 'देखो, दुनिया में क्या-क्या चीज़ें हैं। कितनी अच्छी-अच्छी चीजें।'

भोला बाबू को प्रकृति का यह रूप बहुत अच्छा लगा। सूर्यास्त का यह दृश्य दिखाने के लिए वे अपनी पत्नी को बुलाते हैं किन्तु पत्नी चूल्हे-चौके में इतनी व्यस्त हो चुकी हैं कि उनके अंदर का सौन्दर्यबोध मर चुका है। उन्हें सूरज नहीं दिखता बल्कि सड़क पर ईंटों से लदे खच्चरों की पाँच और उनके पीछे चलते आदमी दिखते हैं। भोला बाबू जब उन्हें ताड़ों के बीच में, धुँधली-धुँधली पहाड़िया, लाल सूरज और गोलाई पर पतले भूरे बादलों को दिखाते हैं और कहते हैं कि, देखो, उसे अच्छी तरह देखो तो वे रूखाई से कहती हैं– 'उसे क्या देखना? आप आज देखते हैं। मैं ज़िन्दगी-भर से देख रही हूँ।'

भोला बाबू को इस विशेष घटना का ऐसा सरलीकरण पसंद नहीं आया। वे देखते रहे- 'सूरज, बादल, बादलों पर, उभरते रंग, रंगों पर खिंचतीं धारियाँ, पहाड़ियों के सामने वाले हिस्सों का धुँधलापन, धुँधलेपन के बिल्कुल ऊपर-चोटी पर लाल कुहासे का क्षीण होना. ....।' उन्होंने सोचा- 'यह सूरज! अब तक कहाँ था? यह शाम आखिर किधर थी? आज वे क्या देख रहे हैं?' भोला बाबू सूर्यास्त का यह दृश्य देखकर अभिभूत हैं। प्रकृति के इस चितेरे ने इस दृश्य को कैद कर लेना चाहा अपनी आँखों में और चाहा कि इस पल का साक्षी वे सबको बना दें। शायद इसीलिए उन्होंने छोटे बच्चे नीलू से सबको बुलाकर लाने को कहा किन्तु सब अपने-अपने कामों में व्यस्त थे, कोई नहीं आया। वे सूरज को देखते रहे, खुश होकर तालियाँ बजाईं और सड़क से गुजर रहे ऊँटवाले से उधर देखने को कहा किन्तु ऊँटवाला भी उधर देखता हुआ आगे बढ़ गया। सूरज डूब गया। वे वहाँ से हट आए। उनका मन उदास होने लगा।

लेकिन भोला बाबू इस खुशी को बाँटना चाहते थे। प्रकृति के इस मनोरम दृश्य के माध्यम से वे सबको उस खूबसूरत शाम से, प्रकृति से जोड़ना चाहते थे। वे ठहरने वाले नहीं थे। 'यह ऐसी बात नहीं, जो यों ही छोड़ दी जाए- उन्होंने विचारा। वे आज चलेंगे और कहेंगे। सबसे कहेंगे। लेकिन सबसे पहले माधव के यहाँ चलेंगे। माधव मुख्तार जो है। सब कुछ समझता है, बूझता है, फिर उसे लेकर कहीं और।' भोला बाबू ने धोती पहनी, छड़ी ली और चल पड़े। रास्ते में उन्हें बीज-गोदाम पर ज़िलेदार साहब मिले जिनके साथ कुछ और लोग भी थे। वे उन लोगों के साथ ही बैठ गए। वहाँ नहर से मछलियाँ पकड़ने के लिए जाल लगाने की बात चल रही थी। सब अपने-अपने तर्क दे रहे थे। भोला बाबू को मौका मिला तो उन्होंने शाम को ही जाल लगाने का तर्क दिया और शाम भी कब जब सूरज डूब रहा हो। लेकिन बात आगे नहीं बढ़ सकी क्योंकि उनकी बात काटते हुए एक आदमी ने तर्क दिया कि 'अरे शाम-वाम से कुछ नहीं होता। मछलियों के चढ़ने का समय आधी रात और भिननुसार है।' भोला बाबू को चुप होना पड़ा। बात हाथ में आकर- फिसल गई- इसका उन्हें दुःख हुआ। लेकिन भोला बाबू ने हार नहीं मानी। उन्होंने सोचा जिलेदार साहब अकेले में हों तो उन्हें शाम वाली बात बताएँगें। जब वहाँ से कोई नहीं टला और देर होने लगी तो भोला बाबू ने जिलेदार साहब को अकेले में बुलाकर अपनी

बात कहनी चाही। शाम के सूरज की खूबसूरती बयान करने पर जिलेदार साहब को कुछ नया नहीं लगा। उन्होंने कहा- 'यह कोई नई बात नहीं। ऐसा रोज़ हो रहा है। मौसम ही इस तरह का है।' उनकी इस बात पर भोला बाबू विस्मित रह गए। हद तो तब हो गई जब इसे ग़ैर महत्वपूर्ण बात मानते हुए जिलेदार साहब ने पूछ लिया- 'बात क्या है? वह कहिए!' भोला बाबू का उत्साह ठंडा पड़ गया और वे यह कहते हुए कि 'अब आपको क्या बताएँ साब!' -सीधे बाज़ार निकल गए।

भोला बाबू दुखी थे। उन्हें लगा कि वे जिलेदार के यहाँ बरबस चले गए। जिलेदार को लोग बेवजह बुद्धिमान कहते थे। आज उसकी पोल खुल गई। फिर उन्हें लगा कि 'यह ऐसी बात नहीं, जिसे सब समझ लें।' परन्तु इस विचार से उन्हें और पीड़ा होने लगी। भोला बाबू इसी पीड़ा को लिए माधववाली गली में मुड़ने को हुए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने माधव को पुकारा किन्तु माधव दोपहर से ही घर से बाहर थे। वहाँ उनकी मुलाकात सोहन से हुई। सोहन मुख्तार साहब की गाय-भैंसों की देखभाल करता था। मुख्तार साहब दोपहर से बाहर थे तो उन्होंने तो सूरज देखा नहीं होगा, हाँ सोहन ने जरूर देखा होगा। यही सोचकर उन्होंने सोहन से पूछा 'तुमने आज सूरज देखा था?' सोहन को बात समझ में नहीं आई। उसने कहा- 'कौन सूरज? सुरजा तेली!' 'नहीं कोल्हू। बेवकूफ़', भोला बाबू खीझ उठे। उसके बाद तो हद ही हो गई। भोला बाबू ने कहा- 'मैं आसमान के सूरज की बात कर रहा हूँ।' 'हाँ बाबू, देखा था।' सोहन ने उत्तर दिया। भोला बाबू उत्साहित हुए- 'कुछ ख़ास तुम्हें लगा था?' 'मतलब?' सोहन ने दीनता प्रकट की। 'कुछ गोल-गोल, कुछ लाल-लाल', भोला बाबू ने सोहन की सहायता की। लेकिन सोहन समझ नहीं सका। उसने कहा- 'तो?' 'तो तुम्हारा सिर! और भैंस पालो', भोला बाबू ने क्रोध में कहा। उनकी रही-सही आशा भी ख़त्म हो गई।

भोला बाबू घर लौट आए। उन्होंने ऐसा सोचा नहीं था। वे परेशान थे कि 'आखिर लोग क्या होते जा रहे हैं? 'घर में बिस्तर पर पड़े हुए उन्होंने सोचा- 'हाय! दुनिया कितनी बदल गई है। ढलती शाम का वह खुशगवार पल उन्हें भूल नहीं रहा था। उन्होंने सोचा कल शाम को सबको बुलाएँगे। और सबको समझाएँगे कि देखो, दुनिया में चूल्हा, योजना, कचहरी, ऊँट और दूध ही सबकुछ नहीं है। सूरज भी है। लेकिन ऐसा सोचते हुए भी उन्हें दुःख हुआ कि 'कितने लोग हैं, जो कल भी इसे समझ सकेंगे।' भोला बाबू के अंदर का उत्साह मरने लगा। वे उदास और खिन्न हो गए। पत्नी खाना लेकर आईं तो खाने से मना कर दिया। भोला बाबू निस्पृह हो चुके थे। उन्होंने अपने को असंग और एकाकी महसूस किया। पत्नी से कहा- 'देखो, कहने को यह बीवी है। यह बेटा है। यह बेटी है। यह मकान है। यह जायदाद है। ये दोस्त हैं। ये नातेदार हैं। लेकिन सच पूछो तो कोई किसी का नहीं।' पत्नी ने आँखों में आँसू भरकर पूछा- 'आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?' 'जब मेरा कोई दुःख नहीं समझ सकता, तो कैसी बीवी और कैसा बेटा? मेरा कोई नहीं है', भोला बाबू का स्वर भी भर्रा आया था। पत्नी रोने लगीं तो साथ में खड़े बच्चे भी सिसकने लगे। भोला बाबू बोले- 'इसमें रोने की क्या जरूरत है? तुम सब जाओ। खाओ-पियो। बस, मैं नहीं खाऊँगा।' लेकिन पत्नी का मन भयभीत होने लगा कि भोला बाबू ये कैसी बातें कर रहे हैं? वे जोर से रो पड़ीं। बच्चे भी चिल्ला पड़े। भोला बाबू कुहनी के सहारे उठ बैठे और पत्नी को झकझोर कर पूछा- 'बिट्टी की माँ। आखिर क्यों? यह सब क्यों?' बिट्टी की माँ और ज़ोर से रोने लगीं। भोला बाबू देखते रहे और सहसा फूटकर रोने लगे। रोने वालों में सबसे ऊँचा और दुखी स्वर भोला बाबू का था।

14.6 सुख : पाठ के बाद

'सुख' की कथावस्तु से स्पष्ट है कि यह कहानी प्रकृति और मनुष्य के बीच के रिश्ते को

व्यक्त करती है। 1964 में 'कल्पना' पत्रिका में 'सुख' प्रकाशित हुई थी। इस दृष्टिकोण से देखें तो यह उस दौर की अलग किस्म की या यूँ कहें कि पहली कहानी है जो प्रकृति और मनुष्य के बीच रिश्ते को लेकर लिखी गई है। कहानी दर्शाती है कि रिश्ते कैसे खत्म हो रहे हैं! दरअसल वह दौर संबंधों के विघटन का दौर था। दूधनाथ सिंह की कहानी 'रक्तपात' और ज्ञानरंजन की कहानी 'पिता' को इस नजरिए से देखा जा सकता है। पति-पत्नी और बाप-बेटा के बीच भी संबंध विघटित हो रहे थे। इसी समय मध्यवर्ग विकसित होना शुरू हुआ था। यह मध्यवर्ग रूपये-पैसे की चिन्ता और फिक्र में था। इस परिस्थिति ने अलगावबोध (एलिएशन) जैसे हालात खड़े किये। इस अकेलेपन का भी सामाजिक संदर्भ है। 1962 के चीन युद्ध में हम हार चुके थे। आज़ादी के बाद के सारे सपने, सारी उम्मीदों से मोहभंग हो चुका था। शहर बढ़ रहे थे और लोग नौकरी की चाह में शहर आ रहे थे। शहर में वे नये थे और अपने को इस माहौल में ढाल नहीं पा रहे थे जिससे वे कहीं के नहीं रहे-न शहर के, न गाँव के।

इन हालातों में संवेदनाएँ क्षरित हो रही थीं। हालाँकि उस दौर में भी बनारस इससे अलग था और वहाँ संवेदनाएँ बची थीं। सामाजिक सरोकार अकहानी दौर में भी शेष था। काशीनाथ सिंह उस दौर में भी जनवादी संदर्भों को अपनी कहानियों में जगह दे रहे थे लेकिन अलगावबोध आम लोगों में बढ़ रहा था। उनके लिए सारा सौन्दर्यबोध बेमानी था। परिणाम यह हुआ कि जगत का सारा सौन्दर्य रूटीन की तरह हो गया। जिसमें कुछ बचा था उसकी हालत भोला बाबू वाली हो गयी। ऐसे माहौल में होता यह है कि कोई चीज़ हमें अच्छी लगती है लेकिन दूसरे को नहीं। 'सुख' कहानी में भी यही होता है। भोला बाबू का दुःख ही सुख है।

काशीनाथ सिंह पर आरम्भ में रसियन क्लासिक, चेखव, प्रेमचंद और रेणु का गहरा असर था। उनके यहाँ लोक कथाओं की शैली भी मिलती है। आरम्भ में वे आधुनिकतावाद पर खूब चोट करते हैं। 'चायघर में मृत्यु' उनकी ऐसी ही कहानी है। लेकिन कहानी कहने की उनकी अपनी ही शैली है। उस पर हम आगे बात करेंगे। यहाँ प्रश्न यह है कि उनके आरम्भिक दिनों की यह कहानी इतनी महत्वपूर्ण क्यों है? दरअसल 'सुख' कहानी की जड़ें इतनी मजबूत हैं कि इसे तो महत्वपूर्ण होना ही था। इस कहानी पर 'चेखव' की कहानी 'ग्रीफ़' (दुःख) का प्रभाव है। चेखव की कहानी में भी एक ताँगेवाला है जो गरीब है। उसके पास खाने तक को नहीं है। इन्हीं परिस्थितियों में उसका बेटा मर गया है। वह दुखी है। बेटा कितना अच्छा था- वह सबको बताना चाहता है। अपने दुःख को बाँटने के लिए वह अपना दुःख सवारियों से कहना चाहता है लेकिन कोई सुनना नहीं चाहता। लौटकर घर आता है तो घोड़े से अपना दुःख कहता है। स्पष्ट है कि 'ग्रीफ़' से सीधे जुड़ती है 'सुख'। उसी हालात में हैं भोला बाबू। सूर्यास्त कितना अच्छा लगता है- इसे बताने की कोशिश वे सबसे करते हैं लेकिन कोई सुनना नहीं चाहता। हर आदमी की अपने काम-धंधे में व्यस्तता है, उसके लिए सूरज का डूबना एक रूटीन है। इस बात का संकेत कि अब रात होने वाली है और उसे अब काम-धंधे के लिए फिर अगले दिन उठना है। शायद रात नहीं होती तो वह और काम करता ! सूर्यास्त रोज की एक सामान्य घटना है, इसमें नया क्या है! और ख़ास बात यह कि यह कोई बात नहीं है जिसको लेकर इतना उतावलापन दिखाया जाय। प्रकृति को लेकर भला इतना उत्साह क्यों? इतना प्यार क्यों? प्यार अगर जरूरत है, आवश्यकता है तो हम प्रकृति को भी इसलिए प्यार करते हैं कि वह हमारी जरूरत है। हम बड़ा होना चाहते हैं और वह इसमे बराबर कहती है, देखो, हमारे जैसा बनो। ऐसा ऊँचा, ऐसा विराट, ऐसा विशाल, इतना सुन्दर, इतना आत्मीय। उठे रहने और तने रहने की अटूट परम्परा। जड़ों से रस चूसकर हर हाल में जीवित रहने की उत्कट अभिलाषा। एक अदम्य जीजिविषा।

लेकिन लोग अपनी-अपनी दुनिया में व्यस्त हैं। एक दूसरे से बात करना तो दूर एक दूसरे को देखने तक की फ़ुर्सत नहीं। कोई किसी को पहचानता नहीं, जानता नहीं। अजनबीपन का धधकता भीषण रेगिस्तान। भोला बाबू भी शायद इसीलिए अपनी पत्नी से कहते हैं- 'देखो, कहने को यह बीवी है। यह बेटा है। यह बेटी है। यह मकान है। यह जायदाद है। ये दोस्त हैं। ये नातेदार हैं। लेकिन सच पूछो तो कोई किसी का नहीं।'.......'मेरा कोई नहीं।' भोला बाबू पूरी शाम घूमते रहे पर उनकी बात कोई नहीं सुना। न ही ख़ास, न ही आम आदमी। उनकी झल्लाहट में जो दर्द है वह उनकी जुबान पर आ जाता है- 'आखिर लोग क्या होते जा रहे हैं?' ....'हाय! दुनिया कितनी बदल गई है।' यह अलगावबोध उन्हें बेधता है। वे ठीक ही कहते हैं- 'जब मेरा कोई दुःख नहीं समझ सकता, तो कैसी बीवी और कैसा बेटा?' उन्हें दुःख है कि सूर्यास्त के सौन्दर्य को समझने वाले अब नहीं रहे- '....कितने लोग हैं, जो कल भी इसे समझ सकेंगे?'

आपके मन में एक प्रश्न आ सकता है कि कहीं यह पीढ़ियों का द्वन्द्व तो नहीं? नई पीढ़ी स्पर्धा भरी दुनिया में भागमदौड़ मचाए हुए है और पुरानी पीढ़ी फ़ुर्सत के रात-दिन को याद करने में ही मस्त है। लेकिन यह द्वन्द्व कहानी में नहीं उभरता। जिलेदार साहब और बिट्टी की माँ भी पुरानी पीढ़ी की ही हैं परन्तु उन्हें सूर्यास्त से मतलब नहीं है। हाँ, उपेक्षा के भाव को लेकर इस कहानी पर एक अलग कोण से भी बात हो सकती है। आप जानते हैं कि नयी कहानी की समय सीमा मोटे तौर पर 1963 तक मानी जाती है और 'सुख' कहानी का प्रकाशन वर्ष है 1964। नयी कहानी के दौर में मार्कण्डेय की 'गुलरा के बाबा', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' और उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी ने धूम मचाई थी। इन सभी कहानियों में बुज़ुर्ग चरित्रों की उपेक्षा का मुद्दा बदलते माहौल में उठाया गया था। उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' के गजाधर बाबू को कुछेक मायनों में भोला बाबू के साथ रख सकते हैं। वापसी में गजाधर बाबू रिटायर होकर घर आते हैं तो 'सुख' में भोला बाबू को नौकरी से वापस आए हफ्ता भी नहीं हुआ था कि शाम वाली घटना हो गई। वह भी वहाँ जहाँ वे जिन्दगी-भर तार बाबू रहे। गजाधर बाबू की पत्नी भी चूल्हे-चौके में इतनी डूब चुकी थीं कि उनके लिए सब कुछ रोज-रोज के रूटीन में ढल चुका था, वहीं भोला बाबू की पत्नी का भी यही हाल है। उपेक्षित गजाधर बाबू भी हैं और भोला बाबू भी दोनों के लिए दुनिया बदल गई है। दोनों के लिए पत्नी और बच्चों तक के संबंधा अपने मायने खो चुके हैं। कहने का मतलब यह कि युगीन यथार्थ का दबाव इन कहानियों के वस्तु निर्माण की सामग्री बनता है। मध्यवर्ग का उदय, शहरीकरण के दबाव, अलगावबोध, अकेलापन, अजनबीपन, एकरसता और संबंधों में टूटन इस दौर की वास्तविकता थी और इसके शिकार संवेदनशील लोग ही हो रहे थे। भौतिकता की दुनिया से अछूते लोगों को लग रहा था कि वे जिन्दगी द्वारा ठगे गए हैं क्योंकि कोई भी अपना सगा नहीं लग रहा था। फिर भी 'वापसी' और 'सुख' के संदर्भ एकदम से एक नहीं हैं। गजाधर बाबू अपने ही बीवी-बच्चों से उपेक्षित होकर पुरानी जगह पर लौट जाते हैं जहाँ गनेशी है, मिल वाले लोग हैं। वहाँ अब भी उनकी इज्जत थी, सम्मान था, दुःख-सुख बाँटने वाले लोग थे। जिन्होंने अपना नहीं समझा वे कोई और नहीं सामाजिक रूप से अपने कहे जाने वाले लोग थे। लेकिन भोला बाबू कहीं और नहीं जाते, अपने घर में ही रहते हैं, फिर भी उन्हें लगता है- उनका कोई नहीं। यह अलगाव कहीं गहरा है, सूक्ष्म है और आदमी की संवेदना को बेधकर उसे पागलपन की हद तक पहुँचा देने वाला है। वे उस दुनिया के हिस्से हैं जहाँ उनकी बात को सनक के रूप में परिभाषित करके उन पर हँसने वाले भी मिल जायेंगे। स्वयं उनकी पत्नी परेशान हैं— 'यह आप क्या कह रहे हैं? आपको क्या हो गया है?' यह 'आपको क्या हो गया है?- स्पष्टतः ध्वनित करता है कि भोला बाबू किसी मानसिक विकार के शिकार हो रहे हैं। भला ऐसे में कोई क्या करे? सब स्तब्ध और हताश होकर जोर-जोर से रोने लगते हैं। यहीं पर यह कहानी नयी

कहानी की दुनिया से निकलकर आगे के दौर की शुरूआत करती है। स्पष्ट है कि काशीनाथ सिंह जब यह कहते हैं कि 'यह कहानी मेरी ही नहीं, मेरे दौर के अलग मिजाज की शुरूआत थी'- तो एकदम सटीक कहते हैं।

14.7 भाषा-शैली

काशीनाथ सिंह अपनी ख़ास शैली में कहानी कहने के लिए प्रसिद्ध हैं। किस्सागोई की शैली उनकी ताक़त है। मानव-मन की संवेदनाओं की सूक्ष्म पकड़ रखने वाला कहानीकार अक्सर संकेतों में सब कुछ कह जाता है। हल्के-फुल्के संदर्भो को लेकर अकथ को कथनीय बनाने का शिल्प भी काशीनाथ सिंह की कहानियों में मिल जाएगा। 'बैलून' कहानी कुछ इसी तरह के शिल्प की कहानी है। उनकी कहानियों में सांकेतिकता तो है ही बिम्बात्मक चित्रण भी खूब है। हालाँकि समय के साथ बनारस का असर उनकी कहानियों पर दिखाई देता है। बनारस की आम जन की अल्हड़ भाषा में वे पाठक के साथ चुहल करते चलते हैं। लेकिन इनमें कहीं भी जनवादी संदर्भ गायब नहीं होते। ढहती हुई सामंती व्यवस्था की कहानी ख़ास संकेतों के साथ देखनी हो तो उनकी कहानी 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' पढ़िए।

इन सब खूबियों के साथ-साथ बनारस की कबीरपंथी शैली भी उनके यहाँ मिलती है। बन पड़ा तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। 'मुसई चा' कहानी का आरम्भ और अंत दिलचस्प है। कहानी के अंत में 'पाठक भाई' का संबोधन 'साधो' की याद दिलाता है। 'जंगल जातकम्' में कहानी कुछ यों बढ़ती है— 'स' इलाके में एक जंगल था। कहानी में लोक स्वर को बोल-चाल की भाषा में जगह मिली है, इसके लिए उन्हें देशज शब्दों से कोई परहेज नहीं है। इससे कहानी में कहीं दिक्कत नहीं आती। कथ्य-शिल्प का गुम्फन ऐसा कि आप कहानी पढ़ते चले जाते हैं और कहीं कोई शब्द नहीं खटकता। व्यंग्य इनकी कहानियों की जान है और व्यंग्य के लिए जिस भाषा की जरूरत है वह उनके पास मौजूद है। 'सुख' कहानी में भी इस तरह की भाषा के संदर्भ मिलते हैं। व्यग्रता में आदमी अक्सर सामने वाले की नासमझी पर व्यंगात्मक टिप्पणी करता है। भोला बाबू भी करते हैं। वे अध ीर हैं सूरज दिखाने के लिए और लोग समझ नहीं पा रहे हैं उनकी बात को। फिर क्या, बिट्टी की माँ के लिए सलाह है- 'जाकर माँड़ पसाओ और आटा गूँथो'। ...'अब एक काम करो कि चलो। चूल्हा फूँको'। ऊँट वाले ने कुछ नहीं कहा तो उनके मुँह से निकला— 'स्साले'। वहीं सोहन उनकी बात नहीं समझ सका तो- 'नहीं, कोल्हू। बेवकूफ़'। ....'तो तुम्हारा सिर! और भैंस पालो'।

कहानियों के आरम्भ में, बीच में या अंत में अक्सर कोई महत्वपूर्ण टिप्पणी करना काशीनाथ सिंह की ख़ास आदत है। 'बाँस' कहानी का आरम्भ देखिए- 'कहानियाँ सुनने—सुनाने के लिए ही होती हैं- आज की हों या कल की। और वे कई तरह की होती हैं। कुछ कहानियाँ होती हैं जिन्हें हम सुनते हुए भी नहीं सुनते! कुछ कहानियाँ होती हैं जो इस कान से आती हैं और उस कान से निकल जाती हैं। कुछ कहानियाँ होती हैं जो कान में आती हैं, कुछ समय के लिए अंदर पड़ाव डालती हैं और अंत में डेरा-डंडा उठाकर चल देती हैं। मगर कुछ कहानियाँ ऐसी भी होती हैं जो दिल और दिमाग में अपना घर बनाती हैं और वहीं बस जाती हैं- हमेशा के लिए।' विभिन्न प्रकार की कहानियों को लेकर यह एक महत्वपूर्ण टिप्पणी है। 'सुख' ऐसी ही एक कहानी है जो दिल और दिमाग में अपना घर बनाती है और वहीं बस जाती है- हमेशा के लिए। कहानी पढ़ते हुए लगता है यह कहानी नहीं कविता है। सूर्यास्त का वर्णन पोइटिक है। सूर्यास्त के सौन्दर्य से अभिभूत भोला बाबू पूरे दृश्य को ऐसे देखते हैं कि कहानी कविता की तरह हो जाती है। भोला

बाबू बाहर निकलते हैं और देखते हैं- 'बाहर हरी घास लाल है। चारदीवारी लाल है..... .... सूरज का गोला छोटा-बड़ा हो रहा था। काँप रहा था। ....सूरज, बादल, बादलों पर उभरते रंग, रंगों पर खिंचती धारियाँ ....प्रकाश कई धाराओं में, कई रंगों में।' हिन्दी कविता में 'संध्या सुन्दरी' का वर्णन कवियों ने भरपूर किया है। काशीनाथ सिंह वह प्रयोग कहानी में करते हैं और ढलती शाम का अद्‌भुत बिम्ब रचते हैं। कहानी बात-चीत की शैली में आगे बढ़ती है। भोला बाबू के इर्द-गिर्द घूमती। बात-चीत है तो संवाद भी बहुत अच्छे बन पड़े हैं। शाम के दृश्य को दिखाने के लिए, समझाने के लिए जिस संवाद-कौशल की जरूरत है, वह यहाँ दिखता है। छोटे-छोटे वाक्यों में, कहीं-कहीं एक-एक शब्द में, हैं, हाँ में। लगता है कोई काव्य-नाटक चल रहा हो। भोला बाबू और बिट्टी की माँ के बीच का संवाद देखिए-

'ताड़ों के बीच में देखो। धुँधली-धुँधली पहाड़ियाँ हैं।'

'हैं।'

'लाल सूरज है?'

'हाँ।'

'गोलाई पर पतले भूरे बादलों की लकीरें हैं?'

'हाँ, हैं।'

'तो देखो। उसे अच्छी तरह देखो।'

'उसे क्या देखना? आप आज देखते हैं। मैं ज़िन्दगी-भर से देख रही हूँ।'

'हूँ' भोला बाबू ने गर्दन हिलाई, 'जिन्दगी-भर से देख रही हो।'

'हाँ।'

'अच्छा। बड़ा अच्छा कर रही हो। अब एक काम करो कि चलो। चूल्हा फूँको।'

उत्सुकता भरते-भरते संवाद बिट्टी की माँ के 'उसे क्या देखना?' कहते ही बिखर जाते हैं और क्रोध एवं व्यंग्य से भोला बाबू उन्हें वहाँ से जाने को कह देते हैं। यह है भाषा की ताक़त। कहानी कहने की शैली का कमाल। पाठक-मंद-मंद मुस्कुराते हुए कहानी पढ़ता चला जाता है, फिर धीरे-धीरे संजीदा होता है और बदलती दुनिया में भोला बाबू के साथ रोता हुआ सोचने के लिए बाध्य होता है। कहानी खत्म होकर वह संदेश दे जाती है जो कहानीकार देना चाहता है। भोला बाबू के 'दुःख' के साथ मिलकर 'सुख' शीर्षक सार्थक हो जाता है क्योंकि भोला बाबू का 'दुःख' ही 'सुख' है जिसे सुनने के लिए किसी के पास फुर्सत नहीं है।

14.8 सारांश

काशीनाथ सिंह की पहली कहानी 'संकट' 'कृति' पत्रिका में सितम्बर, 1960 में प्रकाशित हुई थी। यह 'नयी कहानी' आंदोलन का दौर था। काशीनाथ सिंह ने साठोत्तरी कहानी में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। इनके कई कहानी संग्रह, नाटक, समीक्षा, संस्मरण, उपन्यास आदि प्रकाशित हो चुके हैं। बनारस के रहने वाले काशीनाथ सिंह की रचनाओं में वहाँ की भाषा-बोली और देशज संवेदनाएँ जगह बनाती हैं। सन् 1960 के बाद हिन्दी कहानी में विभिन्न आंदोलनों के नाम सुनाई देते हैं। इनमें सर्वाधिक चर्चित और महत्वपूर्ण कहानी आंदोलन जनवादी कहानी आंदोलन था। काशीनाथ सिंह जनवादी कहानी आंदोलन के प्रतिनिधि कहानीकार हैं।

'सुख' काशीनाथ सिंह की बेहद महत्वपूर्ण कहानी है। भोला बाबू के माध्यम से इस कहानी में प्रकृति और मनुष्य के रिश्ते को दिखाया गया है। 1964 में 'कल्पना' पत्रिका में छपी इस कहानी पर चेखव की कहानी 'ग्रीफ' (दुःख) का प्रभाव है। काशीनाथ सिंह इसे उस दौर के अलग मिजाज की शुरूआत की कहानी मानते हैं। संबंधों के विघटन, अलगावबोध और क्षरित हो रही संवेदनाओं के इस दौर की प्रवृत्तियों को 'सुख' में देखा जा सकता है। कहानी की भाषा सरल है। सूर्यास्त के दृश्य का कवित्वपूर्ण वर्णन है। कहानी पढ़ते हुए लगता है कोई कविता हो। संवाद छोटे-छोटे हैं। व्यंग्य की धार भी तेज है।

14.9 अभ्यास

1. काशीनाथ सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दीजिए।
2. साठोत्तरी कहानी आंदोलनों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. जनवादी कहानी और काशीनाथ सिंह पर टिप्पणी लिखिए।
4. 'सुख' कहानी की कथावस्तु लिखिए।
5. 'सुख' कहानी की समीक्षा कीजिए।
6. काशीनाथ सिंह की भाषा-शैली का परिचय दीजिए।

इकाई 15 हरी बिन्दी : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 लेखक परिचय

15.3 'हरी बिन्दी': पाठ-बोध और प्रक्रिया

15.4 सारांश

15.5 अभ्यास

15.0 उद्देश्य

यह एम.ए. हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल के पाठ्यक्रम की पन्द्रहवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- मृदुला गर्ग के लेखन का परिचय पा सकेंगे/सकेंगी;
- कहानी में स्त्री-दृष्टि को किस प्रकार विन्यस्त किया जाना चाहिए, इस कलात्मकता से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- स्त्री अस्मिता और स्वतंत्रता के संदर्भों के सही परिप्रेक्ष्य से अपनी दृष्टि का विकास कर सकेंगे/ सकेंगी;
- स्त्री-सामर्थ्य और चिन्तन का साक्षात्कार कर सकेंगे/सकेंगी;
- मृदुला गर्ग के लेखन की अद्वितीयता का संधान कर सकेंगे/सकेंगी।

15.1 प्रस्तावना

'हरी बिन्दी' कहानी स्त्री स्वतंत्रता के विषय को अलग दृष्टिकोण से परिभाषित करती है। स्त्री के संदर्भ में हमेशा ही यह बात आती है कि उसे एक ढाँचे में ढाला जाता है। खुद उसे कुछ बनने नहीं दिया जाता। समाज में व्यक्ति के रूप में उसकी स्वीकृति कम और निर्मिति के रूप में उसकी पहचान ज्यादा होती है। स्वयं को साँचों में ढाल दिए जाने के इस सत्य को पहचानने के साथ इन साँचों के चरमराने और टूट जाने की बलवती इच्छा कहानी में दिखाई देती है।

15.2 लेखक परिचय

मृदुला गर्ग एक विशिष्ट कथाकार हैं। उनकी चर्चा के बिना समकालीन हिन्दी कहानी पर की जाने वाली कोई बात पूरी नहीं होती। उनके विषय में यह रेखांकित करना आवश्यक है कि वे महज स्त्री जीवन की रचनाकार नहीं हैं। उनका कैनवस काफी बड़ा है।

मृदुला गर्ग जी का जन्म 25 अक्टूबर, 1938 को कोलकाता में हुआ था। उन्होंने अर्थशास्त्र में एम.ए. किया है। उनकी पहली कहानी 1970-71 में लिखी गई और पहला उपन्यास 1975 में। उनकी प्रकाशित प्रमुख कृतियाँ हैं- उसके हिस्से की धूप, वंशज, चित्तकोबरा, अनित्य, मैं और मैं, कठगुलाब (उपन्यास) कितनी कैदें, टुकड़ा-टुकड़ा आदमी, डैफोडिल

जल रहे हैं, ग्लेशियर से, उर्फ सैम, शहर के नाम, समागम, चर्चित कहानियां तथा मेरे देश की मिट्‌टी, अहा (कहानी संग्रह) एक और अजनबी, जादू का कालीन, तीन कैदें (नाटक), रंग-ढंग, चुकते नहीं सवाल (निबंध संग्रह)। मृदुला जी की कुछ कृतियों का अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। उन्हें कई महत्वपूर्ण सम्मानों से भी सम्मानित किया गया है।

15.3 'हरी बिन्दी': पाठ बोध और प्रक्रिया

'हरी बिन्दी' कहानी के केन्द्र में एक युवा स्त्री है और कहानी की शुरूआत तथा कहानी का अन्त एक पूरे दिन की घटनाओं के क्रम के दो छोर हैं। कहानी की केन्द्रीय पात्र उस दिन अपने पति के शहर से बाहर जाने के बाद घर पर अकेली है। इस अकेले होने को वह इस प्रकार लेती है कि वह अपने को अपनी तरह से जी ले।

कहानी के शिल्प में हमें एक खिलंदड़ापन नज़र जाता है, जिसमें सामान्य-सी छोटी-छोटी बातें हैं और कुछ हरकतें हैं जो ऊपर से देखने पर बिलकुल ही अप्रधान लगती हैं। परन्तु इन अप्रधान लगने वाली बातों एवं हरकतों के माध्यम से ही कहानी सोच की गहराईयों में पाठक को ले जाती है। स्त्री को ख्याल आता है कि उसका पति राजन दिल्ली गया हुआ है तो वह आश्वस्त होती है कि आज सुबह जल्दी नहीं उठना पड़ेगा। वह पलंग पर एक छोर से दूसरे छोर तक लेट जाती है। स्त्री का वह आश्वस्त होना वास्तव में बँधे बँधाए उस नित्यक्रम से मुक्त होने की आश्वस्ति है। स्त्री जीवन की दिनचर्याएँ बँधी-बँधाई हैं परन्तु ये दिनचर्याएँ उसके अपने लिए न होकर दूसरों की सुविधा के लिए हैं। दूसरों द्वारा बनाई गई व्यवस्था से तनिक मुक्ति की साँस लेकर नायिका बिस्तर पर जब पूरा लेट जाती है तो कहानी वहाँ जीवन को पूरेपन के साथ पाने और समग्रता में जी लेने का संकेत देती है जिससे तमाम के दबावों के रहते स्त्री सदैव वंचित रह जाती है। कहानी की स्त्री कलाई पर घड़ी बाँधकर सोती है। यह उसकी आदत है जबकि पति राजन घड़ी की आवाज से चिढ़ता है और उसे उतारने को कहता है। यह घड़ी का बजना वास्तव में स्त्री के भीतर का स्पन्दन है जिसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था सुन नहीं पाती और अगर सुनती भी है तो अनसुना कर देती है।

कहानी की नायिका उठने के उपरान्त चाय बनाकर खिड़की का पर्दा हटाकर बाहर की ओर देखती है तो उसे धुन्ध दिखाई देती है। नायिका को धुन्ध भली लगती है क्योंकि धुन्ध में सब कुछ अदृश्य है और इसमें एहसास है कि कुछ दूर ऐसा है जो मोहक है। वह कहती है कि मैं भी खूब हूँ, मुझे धुन्ध में खुलापन नजर आता है। और सूर्य के प्रकाश में घुटन। यहाँ सोचना है कि जीवन को अपने ढंग से जी लेने में जो सुख है वह दूसरों के द्वारा बनाई गई व्यवस्था में जी लेने में नहीं है। स्पष्ट है कि स्त्री जब पैदा होती है तभी से उसके लिए यह तय कर दिया जाता है कि उसका जीना, उठना, बैठना, बोलना, चलना सभी कुछ किस प्रकार का होगा। एक टूर पैकेज के यात्री की तरह स्त्री अपना जीवन जब जीती है तो भीतर की संवदेनशीलता धीरे-धीरे शून्य होने या कुन्द होने लगती है। कहा तो जाता है कि इस व्यवस्था में स्त्री सुरक्षित है परन्तु इसके तहत रहते स्त्री घुटन का अनुभव लगातार करती है। इस दशा में स्त्री अगर एक कदम भी अपनी ओर से रखती है तो वह स्वतंत्रता की दिशा में उठाया गया कदम होता है।

चाय पीकर नहाने गई नायिका पहले सोचती है कि गरम पानी से देर तक नहाएगी परंतु अचानक ठण्डे पानी की फुहार ऊपर छोड़ती जल्दी-जल्दी नहा लेती है। गरम पानी और शरीर जहाँ कण्डीशनिंग से जुड़ते हैं वहीं शरीर के तापमान से भिन्न ठण्डा पानी उस

कण्डीशनिंग की स्थिति को तोड़ता है। नहा धोकर नायिका स्फूर्ति का अनुभव करती है तो यह स्फूर्ति 'कण्डीशनिंग' अवस्था से अपने को मुक्त कर लेने की झलक भी है। तदनन्तर नायिका नीले रंग का चूड़ीदार पैजामा एवं कुर्ता पहनती है और हरी बिन्दी लगाती है। वह सोचती है यदि उसका पति राजन होता तो कहता कि नीले पर हरे का क्या तुक। यहीं पर वह सोचती है कि आखिर तुक का क्या तुक? कहानी सूचित करती है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था यहाँ यह तो निर्धारित करती ही है कि स्त्री को अपना जीवन किस रीति से जीना है पर साथ ही साथ स्त्री के प्रति पुरुष का और स्त्री के प्रति स्त्री का सोचने का तरीका क्या हो, यह भी इसी व्यवस्था द्वारा तय कर दिया जाता है। यहाँ तक कि सौन्दर्यशास्त्र या सौन्दर्य के प्रतिमान स्त्री के अपने न होकर दूसरों के द्वारा निर्मित होते हैं। इसी कारण सौन्दर्यशास्त्र के बने बनाए ढाँचे में स्त्री की संकल्पनाएँ तक गुलाम हो जाती हैं। कहानी की स्त्री इसी पर प्रश्न चिह्न लगाती है कि 'तुक का क्या तुक है!'

मेज की दराज़ से युवती उन बालों को निकाल कर कानों में लटका लेती है जो शादी के बाद इसलिए पहनने छोड़ दिए गए थे क्योंकि वे सोने के नहीं है। आभूषणों के सन्दर्भ में कहा जाता है कि उनका प्रयोग स्त्री अपने सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए करती है। परन्तु शादी के बाद स्त्री किस प्रकार के आभूषणों को धारण करेगी, यह पति की आर्थिक-सामाजिक हैसियत के आधार पर तय कर दिया जाता है। ये आभूषण स्त्री के सौन्दर्य को निखारने की अपेक्षा समाज में पति की हैसियत को व्यक्त करने का माध्यम अधिक बनते दिखाई देते हैं और स्त्री इस प्रदर्शन के हेतु प्रयुक्त एक उपकरण। कहानी की स्त्री द्वारा नकली बालों को उठाकर पहन लेने की क्रिया स्वयं को दूसरों की शान और शौकत के प्रदर्शन के उपकरण के रूप में प्रयुक्त किए जाने के खिलाफ अस्वीकृति की अभिव्यक्ति है।

बाहर निकलते हुए जब नायिका नौकर से कहती है कि 'जो तुम्हें अच्छा लगे बना लेना। तुम्हें ही खाना है। चाहे खाओ चाहे छुटटी मनाओ।' नौकर को दी गई यह स्वतंत्रता उसी स्वतंत्रता का प्रतिफलन है जिसे स्त्री आज अनुभव कर रही है। यह एक दिन जो स्वतंत्र जीवन के प्रतीक के रूप में आता है उसमें नौकर से कहा गया यह वाक्य 'खुद जियो और औरों को भी जीने दो' की भावना की ओर इशारा करता है जो स्वतंत्रता के सुसंस्कृत रूप के लिए अनिवार्य घटक के रूप में आता है।

बरामदे में बैठा नौकर मुण्डू उस पुरुष का प्रतीक है जो हर वह काम कर सकता है जिसे समाज में वर्जित का दर्जा दिया जाता है। मुण्डू सिगरेट पीता है। परंतु सिगरेट पीना क्योंकि समाज में वर्ज्य माना जाता है अथवा शालीन नहीं माना जाता है अतः वह साहब या मेम साहब की उपस्थिति में सिगरेट नहीं पीता। ध्यान देने की बात यह है कि इस वर्जित कार्य को करते हुए यदि पुरुष पर किसी की नज़र पड़ भी जाती है तो उसे अक्षम्य अपराध के रूप में नहीं लिया जाता। सिगरेट पीना ही नहीं बल्कि घर गृहस्थी, नैतिकता-अनैतिकता आदि से जुड़े तमाम नियम पुरुष के संदर्भ में इतने ही होते हैं कि वे हैं भी और नहीं भी हैं। जब कि समाज में स्त्री की स्थिति इससे भिन्न होती है और नियम कायदे भी उसके सन्दर्भ में कट्टर ही हुआ करते हैं।

कहानी की नायिका की यह हरकत खिलवाड़-सी लग सकती है कि पहले टैक्सी को आवाज देकर उसमें बैठती है और बाद में सोचती है कि कहाँ जाना है। परंतु यहाँ स्वतंत्रता की व्याख्या कहानीकार अपनी कहानी के खिलन्दड़ शिल्प में इस प्रकार करती है कि स्त्री की स्वतंत्रता का हनन वे ताकतें तो करती ही हैं जो उसके लिए रास्ते और

मंजिलें तय कर उसे उस पर चलने को कहती है। परंतु इस व्यवस्था की शिकार स्त्री स्वयं भी स्वतंत्रता की परिभाषा गढ़ती है, रास्ते पूर्वनिर्धारित करती है, मंजिलों की हद भी तय करती है। जबकि स्वतंत्रता एक अनवरत प्रक्रिया होती है। कहानी की स्त्री स्वतंत्रता की उस परिभाषा को भी तोड़ती है जिसमें सब कुछ पूर्वनिर्धारित होने की शर्त होती है। यहाँ समाज निर्मित ढाँचे को तो वह अस्वीकार करती ही है साथ ही इस व्यवस्था के आधार पर स्व निर्मित ढाँचे को भी नकारती है।

जब कहानी की स्त्री टैक्सी में बैठने के उपरान्त सोचती है कि उसे कहाँ जाना है तो यह उसका जीवन के फलक पर पहले उतरना है और उतरने के बाद यह तय करना है कि मेरी दिशा कौन-सी है। यहाँ चाहे सोच कर हो या बिना सोचे ही, स्त्री ने जो कदम उठाया है, वह उसका अपना है।

टैक्सी में बैठी स्त्री को सर्वप्रथम सूझता है- जहाँगीर आर्ट गैलरी। स्वतंत्रता या स्वच्छन्दता का एहसास सर्वप्रथम स्त्री को अनायास ही कला की ओर खींच ले जाता है। स्वतः ही जहाँगीर आर्ट गैलरी और चित्रप्रदर्शनी का उसके ध्यान और जबान पर आ जाना इसी की सूचना है। चित्र प्रदर्शनी में युवती चित्र को देखती है तो उसे आनन्द आता है क्योंकि आज स्वच्छन्द मन से किसी भी चीज का आस्वादन करने में वह सफल है। सैद्धान्तिक ज्ञान अथवा आस्वादन के लिए बनाया गया नियम इसमें आड़े नहीं आता।

कला को आस्वादन की अपेक्षा अध्ययन का विषय बनाकर उसे साधारण जनता से अलग किया जाता है। कहानी की स्त्री जब बिना सैद्धान्तिक ज्ञान के चित्र को देखकर आनंदित होती है तो कला जनसाधारण के आस्वादन स्तर पर उतरती है। युवती को जब लगता है कि 'रेखाएं इधर-उधर दौड़ रही हैं, बिलकुल मेरे कुर्ते की तरह' तो वहाँ वह कला को जीवन से जोड़ती है।

यहाँ चित्र और स्त्री का कुर्ता उपमान उपमेय संबंध को लेकर प्रस्तुत होता है। कुर्ता रंग बिरंगी रेखाओं से युक्त है और ये रेखाएं जीवन की रेखाएं हैं। जिस प्रकार चित्र को बिना समझे हँस दिया जाता है, आनन्द ले लिया जाता है, ठीक उसी प्रकार स्त्री जीवन को भी उसकी अर्थवत्ता समझे बगैर आस्वादित कर लिया जाता है। चित्र, युवती और आस्वादन ऐसे तीन प्रतीक हैं जो स्त्री समाज और एप्रोच की ओर संकेत करते हैं। युवती का जोर से हँस पड़ना भी तीनों के बीच की विडम्बनात्मक स्थिति को ही जाहिर करता है।

नायिका जब रेस्तरां को देखती है तब उसे याद आता है कि जोरों की भूख लगी है। आम तौर पर स्त्री का जीवन रसोई और खाने के साथ जुड़ा होता है। परन्तु यह जुड़ना अधिकतर दूसरों की भूख और स्वाद को ध्यान में रखते हुए होता है। स्त्रियों को अपनी भूख या उसकी अभिरुचि का ख्याल ही नहीं होता। भोजन की रुचि संबंधी अवधारणा घरों में होती है तो वह निन्यानबे प्रतिशत पुरुष की रुचि के आधार पर ही निर्मित होती है। घर के खाने का स्वाद तथा समय पुरुष की पसन्द और सुविधा पर ही आश्रित रहता है। भले ही खाने की पूरी तैयारी स्त्री द्वारा क्यों न की जाती हो।

रेस्तरां में जाकर युवती जब आर्डर देती है 'एक प्लेट गर्मागर्म टिकिया और एक आइसक्रीम' तो उसमें खाद्य संबंधी अवधारणा के बने बनाए ढाँचे को तोड़ने की बात आती है। हम जिस मामले में इतना कण्डीशन्ड हैं कि खाने वाला आदमी क्या खाना चाहता है, इसका कोई अर्थ नहीं होता। समाज में जीने वाला हर आदमी इसका इतना आदि हो जाता है कि इससे भिन्न होने की बात सोच ही नहीं पाता। यही रवैया स्वतंत्रता का हनन

करने वाली तमाम रूढ़ियों के प्रति समाज के बहुसंख्यक लोगों का होता है। युवती द्वारा गरम टिकिया और ठंडी आईस्क्रीम का आर्डर देने पर बैरे का चौंकना इसी की सूचना है। बैरा प्रश्न करता है- 'एक साथ?' परन्तु यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि बैरे के प्रश्न का प्रतिप्रश्न पुरुष मानसिकता और रूढि के खिलाफ उठने वाले सवाल के रूप में उभरता है-' हाँ, कोई एतराज है क्या?' कहानी के स्वाद की भाषा स्वतः ही यहाँ विषय स्पष्ट करती जान पड़ती है। सवाल के अनुतान के माध्यम से ही ठण्डे और गरम को एक साथ न खाने की संकल्पना पर प्रहार होता है। इसी अनुतान के माध्यम से यह सवाल तमाम रूढ़ियों पर चोट करता है। अनन्तर उसे तोड़ता है। यहाँ वह स्वाद का ढाँचा तोड़कर वह स्त्री अपनी स्वतंत्रता को अभिव्यक्त करती है।

इसके बाद स्त्री का गमन दृश्य की ओर होता है। रेस्तरां के बाहर निकलकर युवती की सोच में पिक्चर देखने की बात आती है। वह एक ऐसी फिल्म देखना चाहती है जो उसकी अपनी पसन्द की हो, पति द्वारा चुनी हुई नहीं। संकेत यहाँ इस बात का है कि खाने की ही भाँति स्त्री का देखना भी, अर्थात 'स्त्री क्या देखे और कितना देखे और कैसे देखे' का निर्धारण पुरुष की अभिरूचि और उसके स्तर के आधार पर ही तय की जाती है। यहाँ कहानी की नायिका अपने द्वारा देखे जाने का दृश्यपट स्वयं तय कर रही है। इस प्रकार वह दृश्य हेतु बनाए गए साँचों को तोड़ रही हैं।

सिनेमाघर एक सार्वजनिक स्थल है। सार्वजनिक स्थल पर जाते समय भी शिष्ट व्यवहार के नाम पर कुछ शर्तें हैं। ये शर्तें कहीं भी लिखित नहीं हैं। परंतु अलिखित रूप से ये शर्तें स्त्री और पुरुष दोनों के लिए अलग-अलग रूप से भी हैं। सिनेमाघर में पिक्चर देखने के दौरान किसी मजाकिया दृश्य पर जोर से हँसना सभ्यता की इस अलिखित शर्त के खिलाफ है परन्तु नायिका अपनी हँसी की उन्मुक्तता को बंधन में बाँधे बगैर सिनेमा का पूरा आनन्द लेते हुए जोर से हँसती है। इसी प्रकार मर्द के हाथ से हाथ टकरा जाने पर 'सॉरी' कहना भी सभ्य व्यवहार के नाम पर संवेदना शून्य एक यान्त्रिक प्रक्रिया है। यहाँ भी हँसते हुए स्त्री का हाथ जब एक पुरुष से टकरा जाता है तब वह 'सॉरी' कहने के लिए मुड़ती है ठीक वैसे ही जैसे नीला चूड़ीदार पैजामा पहनने के बाद उसका हाथ पहले नीली बिन्दी की तरफ जाता है। परंतु यहाँ भी वह इस खोखले शिष्टाचार के तिलिस्म से बाहर आना चाहती है अतः 'सॉरी' कहने के बजाय वह हँस पड़ती है।

पिक्चर देखने के उपरान्त सिनेमा हाल में मिले पुरुष के साथ युवती कॉफी लेती है। वह स्वयं कॉफी के पैसे देती है और आश्वस्त होती है कि पुरुष होने के नाते उसके साथी ने पैसे देने की जिद नहीं की। अनन्तर बादलों से घिरे आकाश को और समुद्र को वे साथ-साथ बैठकर देखते हैं।

पुरुष प्रश्न करता है-आप क्या सोच रहीं हैं? तो स्त्री का उत्तर होता है- 'मैं सोच रही थी यदि समुद्र में कूद पडूँ तो कितनी दूर तक अकेली तैर सकूँगी।' यहाँ स्त्री का यह वाक्य संकेतात्मक है। स्त्री का यह वाक्य वस्तुतः स्वतंत्रता को परिभाषित करता हुआ हर व्यक्ति में उसको पा लेने की क्षमता की हद निर्धारित करता है। वस्तुतः स्वतंत्रता का अर्थ मात्र सुविधाओं को पा लेना मात्र नहीं होता है बल्कि स्वतंत्रता इस बात पर भी निर्भर करती है कि व्यक्ति अपनी व्यवस्था आप करे अन्यथा आश्रित होना अपने आप गुलामी की ओर को ले जाता है। युवती जब कहती है -'समुद्र में मैं कितनी दूर अकेले तैर पाऊँगी' तो वह स्वयं मापती है कि अपनी व्यवस्था आप कर पाने में वह कहाँ तक सफल या समर्थ होगी। अथवा एक व्यक्ति के रूप में स्वतंत्र जीवन जीने की क्षमता स्त्री ने किस हद तक हासिल कर ली है। लेकिन पुरुष का यह सोचना कि टैक्सी का भाड़ा कितना लगेगा उसे पूंजी और व्यय से जोड़ता दिख पड़ता है।

युवती आश्वस्त होती है कि वह आज पहली बार एक ऐसे पुरुष से मिल रही है 'जो यह नहीं जानना चाहता कि उसके पति हैं या नहीं। और हैं तो क्या काम करते हैं।' स्त्री इसे एक सकारात्मक परिवर्तन के रूप में लेती है और आश्वस्त होती है कि यहाँ यह, पुरुष चिन्तन और संस्कृति के स्तर पर उठा हुआ है, वह स्त्री को महज एक सम्पत्ति के रूप में या वस्तु के रूप में नहीं देख रहा है। अथवा बेटी, पत्नी आदि के रूप में स्त्री को वह पुरुष की 'सैटलाइट' नहीं मान रहा है। स्त्री को वह एक व्यक्ति के रूप में स्वीकार कर रहा है। यह भावना स्त्री को आश्वस्त करती है। रेस्तरां में कॉफी के पैसे वह स्वयं देती है। तब आमतौर पर पुरुषों की तरह यह पुरुष खुद पैसे देने की जिद नहीं करता। बिल के पैसे स्वयं देने वाली स्त्री यहाँ भी आश्वस्त है कि स्त्री होने के नाते उसके स्व (सेल्फ) को सेकेन्ड्री (दोयम) नहीं माना गया। आधे-आधे पैसे भाड़े के देकर टैक्सी ले कर घर जाने की बात तय हुई परंतु टैक्सी से स्त्री के उतरने पर, पैसे निकालने पर वह स्त्री को मना कर देता है- 'रहने दीजिए'। यहाँ स्त्री असहज होती है। पर पुरुष उसके 'क्यों' के जवाब में कहता है - 'आज का दिन मेरे लिए काफी कीमती रहा है।...... मैंने आज से पहले किसी को हरी बिन्दी लगाए नहीं देखा।' यहाँ हम देखते हैं कि साथ बिताए हुए पूरे समय में स्त्री इसलिए आश्वस्त होती रही कि उसने युवती को एक मित्र या परिचित के रूप में लेते हुए एक व्यक्ति का दर्जा दिया न कि उसे एक 'औरत' मात्र के रूप में लैंगिक आधार पर देखा। स्त्री इसे समानता का ही संकेत मानती है। परन्तु अन्ततः स्पष्ट होता है कि इस पुरुष का भी ध्यान उसके खुले व्यक्तित्व या स्वतंत्र चिन्तन पर न जाकर उसके शरीर की सजावट के लिए लगाई गई हरी बिन्दी पर गया। पुरुष अपने दिन को केवल इसीलिए कीमती मानता है कि उसने एक ऐसी स्त्री को देखा जो दूसरों से भिन्न है।

15.4 सारांश

आपने इकाई का अध्ययन कर लिया। यह मृदुला गर्ग की बेहद असरदार कहानी है। कलात्मक संतुलन, प्राणवान कथ्य और वैसी ही भाषा ने इस कहानी को विलक्षणता प्रदान की है। इस इकाई को पढ़ने के बाद निश्चय ही आपकी दृष्टि में परिवर्तन आया होगा। आपने कहानी के विश्लेषण में देखा कि स्त्री के लिए हमारे समाज में दोहरे मानदण्ड हैं। सामान्यतः स्त्री के लिए जिन बातों-प्रसंगों को हम प्राकृतिक मान बैठते हैं, दरअसल वे प्राकृतिक नहीं, कृत्रिम और समाज द्वारा आरोपित हैं। उनका सृजन पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने किया है। यह कहानी अपने प्रतीकों, संवादों और अन्य संकेतों के माध्यम से स्त्री-स्वतंत्रता और अस्मिता का नया पाठ रचती है। बेहद कसे शिल्प में रची गई यह कहानी कहीं भी अतिरेक का आश्रय नहीं लेती और इसी कारण अपने प्रभाव में अद्वितीय है।

15.5 अभ्यास

1. 'हरी बिन्दी' कहानी में अभिव्यक्त स्त्री-स्वतंत्रता पर प्रकाश डालिए।
2. 'हरी बिन्दी' कहानी में आए हुए प्रतीकों पर विचार कीजिए।
3. 'हरी बिन्दी' कहानी की युवती स्वतंत्रता को किन मायनों में स्वीकारती है? कहानी के आधार पर लिखिए।
4. 'हरी बिन्दी' कहानी के शिल्प पर विचार कीजिए।

इकाई 16 बोलने वाली औरत : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 साठोत्तरी कहानी आंदोलन

16.3 सचेतन कहानी आंदोलन की पृष्ठभूमि और ममता कालिया की कहानियाँ

16.4 स्त्री-विमर्श और ममता कालिया

16.5 'बोलने वाली औरत' : पाठ-बोध और प्रक्रिया

16.6 सारांश

16.7 अभ्यास

16.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप सातवें दशक की सशक्त कथाकार ममता कालिया के कथा साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे/करेंगी। स्त्री-विमर्श पर केन्द्रित इनकी एक प्रभावशाली कहानी 'बोलने वाली औरत' पाठ हेतु आपके सामने है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- नई कहानी आंदोलन के पश्चात् कहानी क्षेत्र में उद्‌भुत कई आन्दोलनों की सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि को जान सकेंगे/सकेंगी;
- 'सचेतन कहानी आन्दोलन' के परिप्रेक्ष्य में ममता कालिया के कथा साहित्य से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- ममता कालिया के नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- 'बोलने वाली औरत' कहानी के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की नियति एवं अपनी अस्मिता और अभिव्यक्ति के लिए उसके अन्तः बाह्य संघर्ष को समझ सकेंगे/सकेंगी।

16.1 प्रस्तावना

1967 में प्रकाशित अपने पहले कहानी संग्रह 'छुटकारा' के प्रकाशन के साथ ही ममता कालिया ने हिन्दी कथा जगत में जोरदार दस्तक दी। यह नई कहानी के बाद का वह दौर था, जिसे 'साठोत्तरी कहानी' या 'सातवें दशक की कहानी' के नाम से भी जाना जाता है। हिन्दी कथा साहित्य के लिए यह रचनात्मक और विचारात्मक विस्फोट का कालखंड है, जिसमें देखते ही देखते नई कहानी के पक्ष और विपक्ष में हुई बहसों के बहाने अनेक कथा आन्दोलनों की अनुगूंज सुनाई देने लगी थी। वस्तुतः नई कहानी की प्रतिबद्धताओं और सीमाओं की राख से जन्मी यह साठोत्तरी कहानी उसके विस्तार या परिपूरक के रूप में सामने नहीं आई, बल्कि इसने नई कहानी के प्रति विरोध का स्वर मुखर किया।

साठोत्तर युवा कहानीकारों का मानना था कि धूमकेतु की तरह हिन्दी कथा जगत को अपनी उपस्थिति से अचंभित कर देने वाली नई कहानियों में, वैयक्तिक आक्रोश, संत्रास, घुटन, अजनबीपन, यौन, व्यर्थताबोध, आदि की जो बातें प्रमुखता से उठाईं जा रहीं हैं वह स्वानुभूत और प्रामाणिक नहीं हैं, बल्कि आयातित हैं। साथ ही नई कहानी अपने आखिरी चरण में मूल्यग्रस्त अस्थिरता से ग्रसित होकर कुछ ही व्यक्तियों को प्रतिष्ठित करने में तल्लीन है। अपने ही अन्तर्विरोधों से डगमगाई यह नई कहानी अब नए क्षितिज तलाश करने में अक्षम सिद्ध हो रही है, इसीलिए कथाकार जो नई कहानी आन्दोलन से वैचारिक मतभेद रखते थे, वे एक अलग मंच पर एकत्र होने लगे।

इन रचनाकारों में काशीनाथ सिंह, गिरिराज किशोर, ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, ममता अग्रवाल (कालिया), दूधनाथ सिंह, रमेश उपाध्याय, विजय मोहन सिंह, गंगाप्रसाद विमल, महीप सिंह आदि प्रमुख हैं। यह सभी नई कहानी के खेमे से अलग, अपनी स्वतंत्र पहचान बनाना चाहते थे। यद्यपि कमलेश्वर ने इन नए कथाकारों को नई कहानी आन्दोलन से जोड़ने का प्रयास किया था, इसलिए वे 1965 में आरा (बिहार) में विजयमोहन सिंह द्वारा गोविन्द मिश्र के सहयोग से आयोजित साठोत्तरी कथा सम्मेलन में भी सम्मिलित हुए थे। लेकिन जैसा कि मधुरेश ने कहा 'ये युवा लेखक किसी परम्परागत नैतिकता या सामाजिक प्रतिबद्धता के कायल नहीं हैं वे सत्य को अपनी आंखों देखने पर अधिक विश्वास करते हैं' इसलिए इन युवा कथाकारों ने कमलेश्वर और नई कहानी से जुड़ने के बजाय अपनी अलग जमीन तलाशने और नए मुहावरे गढ़ने को ही उचित समझा। स्वयं ममता कालिया ने साठोत्तरी कहानी आन्दोलनों की पृष्ठभूमि, उनकी आवश्यकता और कहानी की सार्थकता को रेखांकित करते हुए लिखा- 'छठे दशक की कहानी अपने ओढ़े हुए दायित्व के बोझ तले खुद ही दब गई और नुस्खों की शिकार हो गई। हर कहानीकार ने अपने ढंग को ढर्रा बना लिया और उसे छाँटता तराशता रहा। दरअसल जिनके हाथों कहानी को देश की स्वाधीनता के बाद ज़िन्दगी मिली थी, उन्हीं के हाथों में उसका दम घुटने लगा। नए कहानीकार अपने को दोहराने लगे थे या फिर परस्पर पूजापरक संस्मरण लिखने में। नई कहानी में गढ़ाव का मोह, चटपटी घटनाओं की भरमार और सनसनीखेज क्लाइमेक्स की जिद के साथ नाटकीय भूमिका लेखन, आत्मवक्तव्य और आत्मस्वीकृति का तामझाम न होता तो साठोत्तरी पीढ़ी के लिए कहानी विधा का सतहीकरण ज्यादा ग्राह्य और स्वीकार्य होता। ......(इसीलिए) हम सब नए रचनाकार नई कहानी से हटकर कहानी लिख रहे थे। हमारी भिन्नता के बिन्दु थे- कथावस्तु, शिल्प, भाषा-शैली और समस्त विन्यास। नई कहानी के पुरोधाओं को हमारे प्रयोग रास नहीं आ रहे थे। हमारे मन में उनके प्रति कोई वैमनस्य नहीं था, केवल हमें नई कहानी, पुरानी लगने लगी थी।' (तद्भव 15, पृ0 161)

वस्तुतः नई कहानी से साठोत्तरी कहानी का अलगाव, समय की दृष्टि से कम दृष्टिकोण में परिवर्तन के कारण अधिक हुआ। मधुरेश ने इसीलिए सातवें दशक की कहानी को 'बदले हुए भावलोक की कहानी' कह कर इस परिवर्तन को रेखांकित किया। स्वयं कहानीकारों की पिछली पीढ़ी, जो नई कहानी आन्दोलन का परचम फैला रही थी, में भी कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर बदलाव परिलक्षित होने लगा। नए कथाकार तो यथार्थ के करीब जाकर उसकी चीड़फाड़ कर ही रहे थे। अतः नई और पुरानी दोनों ही पीढ़ियों की सक्रियता के कारण रामदरश मिश्र जैसे आलोचकों का मानना है- 'अलगाव की कुछ रेखाओं के बावजूद ऐसा प्रतीत होता है कि साठोत्तरी कहानी नई कहानी का ही नए संदर्भों में विस्तार या विकास है और सातवें दशक के कथाकार मात्र वे ही नहीं हैं जिन्होंने सातवें दशक में ही लिखना शुरू किया था बल्कि जो छठे दशक में अपना लेखन आरंभ करके सातवें में भी लिख रहे थे और अपने समय के यथार्थ को पहचान रहे

थे, वे भी सातवें दशक के ही कथाकार माने जाएगें।' (हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान, पृ0 94)

सत्तर का यह दशक खासे उथल-पुथल का था। संक्रमण के इस काल में एक ओर तो समाज युद्धोतर पराजय बोध और मोहभंग की स्थिति से गुजर रहा था, वहीं पश्चिम से आया अस्तित्ववाद इसमें सम्मिलित हो गया। इसके भी दो खेमे थे। जहाँ सारेन कीके गार्द ने मनुष्य स्वतंत्रता को महत्व देते हुए उसके अस्तित्व और आस्था के पक्ष में तर्क स्थापित किए, वहीं उनके बरक्स सार्त्र और कामू अनास्था, आशंका और निराशा जैसे भाव बोध के साथ सामने आए। इन विचारों ने शीघ्र ही हिन्दी कथाकारों को अपनी चपेट में ले लिया। फलतः कहानियों में यथास्थितिवाद के स्थान पर संघर्ष और विद्रोह का आग्रह, परम्परागत मूल्यवादी दृष्टि के स्थान पर अनास्था एवं मूल्यहीनता का स्वर, रोमान के प्रति नकारात्मक रवैया, घिसी-पिटी चिकनी भाषा की जगह प्रसंगवत खुरदुरी भाषा का प्रयोग दिखने लगा। कहानियों में कथ्य गायब होने लगा और चरित्रों का भी कोई खास महत्व न रह गया। इससे व्यक्ति को असहाय, निरर्थक, फालतू और असंगत बनाने वाले बाह्य परिवेश, आतंरिक संघर्ष तथा व्यक्ति और व्यक्ति के बीच संघर्षों का चित्रण केन्द्र में आने लगा। घृणा और विक्षोभ का स्थाईभाव बने आधुनिक परिवेश में जीने के प्रति ऊब, खीझ, निराशा, अंतमंथन, फिर विद्रोह स्वरूप फूटते विस्फोट को इन नए कहानीकारों ने अपनी आंखों से देखा, स्वयं जिया और भोगा। युवा पीढ़ी की इस मानसिक उथलपुथल ने कई कथा आन्दोलनों को जन्म दिया- अकहानी, सचेतन कहानी, सक्रिय कहानी, समांतर कहानी, जनवादी कहानी, सहज कहानी आदि।

16.2 साठोत्तरी कहानी आंदोलन

अकहानी

नई कहानी से पृथक एक स्वतंत्र पहचान बनाने के उद्देश्य से कुछ कहानीकारों ने एक नए आन्दोलन का सूत्रपात किया जिसे 'अकहानी आन्दोलन' कहा गया। वैश्विक पटल पर फ्रांस में जो भूमिका 'एन्टीस्टोरी' की थी, लगभग उसी तरह हिन्दी कहानी में 'अकहानी' को शुरू करने का प्रयास किया गया। अकहानी शब्द का अर्थ बताते हुए श्याम परमार का कहना है कि ''अ' उपसर्ग निषेधात्मक होने के साथ-साथ पूर्व पीढ़ी से या नई कहानी से साठोत्तर कहानी को अलग करने का काम भी करता है। यही कार्य इस उपसर्ग ने कविता में भी किया।' (अकविता और कला का संदर्भ, पृ0 13) 'अकहानी' को अपरिभाषेय कहा गया और इसे परिभाषित या व्याख्यायित करने का उत्तरदायित्व स्वयं अकहानीकारों ने ही लिया, जिनमें गंगाप्रसाद विमल, रवीन्द्र कालिया, विश्वेश्वर आदि का नाम उल्लेखनीय है।

अकहानी आन्दोलन के पुरोधाओं में से एक डॉ0 गंगाप्रसाद विमल ने अपने अनेक लेखों के द्वारा अकहानी के मंतव्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया। वे लिखते हैं- 'अकहानी' कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा किसी भी तरह के मूल्य स्थापना का अस्वीकार हैं।' (समकालीन कहानी का रचना विधान, पृ0 17) अन्यत्र वे कुछ और स्पष्टिकरण देते हुए कहते हैं कि- 'लगभग सभी समकालीन रचनाएं पूर्व रचनाओं का विकास या विरोध न होकर एक नए तरह की कथा रचनाएं हैं, जिन्हें सामान्य शब्दों में कथा रचनाएं भी नहीं कहा जाना चाहिए, इसीलिए उन्हें 'अकहानी' कहा जाता है।' अर्थात् परम्परागत कथानक के शिल्प या फ्रेम को नकारते हुए इन कहानियों ने जीवन मूल्यों की शास्त्रीय व्याख्याओं को सिरे से नकार दिया। यही कारण है कि अकहानी में संत्रास, आत्मपीड़न, ऊब,

अकेलापन, अजनबीपन, विसंगति अर्थात व्यर्थता बोध या एब्सर्ड भाव का चित्रण दिखाई देता है। व्यर्थता बोध का दर्शन कामू के जीवन दर्शन से आयातित है जिसका प्रतीक शब्द है 'अस्वीकृति'। यहाँ 'अ' केवल विशेषण नहीं है, बल्कि एक जीवनमूल्य है, जो नए कहानी आन्दोलन के 'भोगे हुए यथार्थ', 'अनुभव की प्रामाणिकता' 'प्रतिबद्धता' जैसे खोखले नारों के विरोध में उठ खड़ा हुआ है। 'अस्वीकृति के स्वीकार' के पक्ष में जहाँ रवीन्द्र कालिया ने सातवें दशक में ही लिखा था कि- 'मुझे कहानी के उस स्वीकृत रूप से घोर वितृष्णा है, जिस अर्थ में वह आज कहानी के नाम से जानी जाती है।' (ज़रा सी रोशनी, पृ0 117) वहीं गंगाप्रसाद विमल भी कहते हैं- 'अकहानी कहानी की धारणागत प्रतीति से अलग एक अस्थापित कथा धारा है जो कहानी के सभी वर्गीकरणों, कहानी के मूल्यांकन आधारों और कहानी की पूर्व समीक्षाओं को अस्वीकार करती है। इसीलिए अनेक समर्थ कथाकार इस सच्चे नवलेखन को मूल्यांकन सापेक्षी नहीं बनाते बल्कि वे इसके लिए किसी मूल्यांकन को अस्वीकार भी कर देते हैं।' (वही, पृ0 65) पश्चिमी दर्शन से आयातित यह जीवन बोध भारतीय परिवेश को अंशतः ही प्रभावित कर पाया, लेकिन इसने कई महत्वपूर्ण कहानियाँ दीं- 'त्रास,' 'अकहानी', 'नौ साल छोटी पत्नी' (रवीन्द्र कालिया), 'रीछ', 'आइसबर्ग', 'रक्तपात' (दूधनाथ सिंह), 'पिता', 'सम्बन्ध', (ज्ञानरंजन), 'विध्वंस', 'प्रश्नचिह्न', 'दूसरे दिनों का इंतजार' (गंगाप्रसाद विमल), 'कुछ महीने' (विजयबहादुर सिंह), 'आकाश का दबाव' (अवधनारायण सिंह) आदि।

इस आन्दोलन की सीमाएं अधिक हैं उपलब्धियाँ कम। अपनी जगह निहायत संकुचित तथा एकलाप से भरपूर इस आन्दोलन में जितनी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ दिखती हैं, उससे ज्यादा कथाकारों की साहित्यिक गुटबाजी और अधिकार सुख का पर्दाफाश होता है। प्रभुताई के द्वन्द्व में वे ही लेखक स्थिर रह पाए जिनकी रचनाओं में युगीन बोध का व्यापक विश्लेषण हुआ। लेकिन समय की नब्ज को पकड़ने के फेर में इन कहानीकारों ने पुराने सम्बन्धों, उनकी ऊष्मता, उनकी आत्मीयता को ही समाप्त कर दिया। बेहद ठंड़े, असम्पृक्त और नफरत भरे भावों के साथ इन्होंने रिश्तों को जिया, चाहे वह माता-पिता के साथ हो या दाम्पत्य का। अकहानी में माता-पिता मात्र परम्परा का प्रतीक नहीं हैं वह व्यवस्था के प्रतीक हैं। व्यवस्था के नकार के दृष्टिकोण के कारण माता-पिता के साथ भावनात्मक सम्बन्धों में जीवंतता नहीं रह गई, वहीं पति-पत्नी के रिश्तों में भी अंतरंगता की जगह ऊब, घुटन, तनाव या नफरत जैसे भाव हावी हो गए। वस्तुतः अकहानी सम्बन्धहीनता और सम्बन्धाभाव की स्थितियों को उभारती है। इसमें सम्बन्धों के जिस संसार का चित्रण है वह बहुत भयावह, तकलीफदेह और निर्मम है। काशीनाथ सिंह की 'सुख', रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी', ज्ञानरंजन की 'पिता' दूधनाथ सिंह की 'रक्तचाप' आदि कहानियों में पुरानी पीढ़ी के माध्यम से नई पीढ़ी ने आत्मान्वेषण किया और पाया कि नजदीकी रिश्ते इस कदर बेमान हो गए हैं कि उनसे कुछ अर्जित होने की संभावना शून्य है। वेदप्रकाश अमिताभ इस प्रकार के रचनात्मक संकेत को अकहानी का 'प्लस प्वाइंट' मानते हैं। लेकिन इन स्थितियों परिस्थितियों को उभारने के लिए अकहानीकार जब सेक्स का सहारा लेते हैं तो समस्त संभावनाएं विलुप्त होती दिखती हैं। सेक्स प्रधान कहानियों में कृष्णबलदेव वैद की 'त्रिकोण', दूधनाथ सिंह की 'रीछ', श्रीकांत वर्मा की 'साथ', 'घर', 'टयूटर', मणिका मोहिनी की 'एक ही बिस्तर पर', गंगा प्रसाद विमल की 'अपना मरना', मणि मधुकर की 'कटघरे में सांस' जैसी कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। यद्यपि कालान्तर में, अनेक कथाकार यौन संदर्भों का रस लेने की होड़ में ही दिखते हैं, पर यह सत्य है कि इस आन्दोलन ने चाहे नकारात्मक ढंग से ही सही नई कहानी के स्थापित आभिजात्य और ठहराव को तोड़ा और इसके लिए उन्होंने पुराने शिल्प को ध्वस्त कर अपनी एक नई खिलंदड़ी शैली भी विकसित की, इसी को अकहानी की विशेषता कहा जा सकता है।

सचेतन कहानी

नवम्बर सन् 1964 में नई कहानी आन्दोलन के गत्यावरोध की प्रतिक्रिया में एक और आन्दोलन की शुरूआत हुई जिसे सचेतन कहानी के नाम से जाना गया। इस कहानी आन्दोलन के प्रवक्ता डॉ0 महीप सिंह ने आन्दोलन के पक्ष में तर्क देते हुए 'आधार' नामक पत्रिका के सचेतन कहानी विशेषांक में लिखा-यद्यपि सचेतन कहानी का मुख्य उद्देश्य अस्तित्ववादी दर्शन का विरोध और मनुष्य की सार्थकता की खोज है लेकिन नई कहानी आन्दोलन के कुछ कहानीकार अपने-अपने मित्रों को स्थापित करने की मुहिम चला रहे हैं जिससे उनके बाहर कहानी या हिन्दी कहानी को देख पाना सम्भव नहीं। इससे कहानीकारों की प्रतिबद्धता और नए भाव बोध तलाशने की प्रवृत्ति में भी कमी दिखने लगी। अतः कहानी को वैयक्तिकता से मुक्त करके वैचारिक धरातल पर प्रतिष्ठित करना आवश्यक है। सचेतन कहानी की इस वैचारिकता को स्पष्ट करते हुए वह पुनः लिखते हैं कि 'सचेतना एक दृष्टि है। वह दृष्टि जिसमें मानव जीवन जिया जाता है और जाना भी जाता है और यह सचेतन दृष्टि आधुनिकता की दृष्टि है, जो हमारे सक्रिय भाव बोध पर केन्द्रित है। सक्रियता ही भविष्य की ओर उन्मुख करती है। निस्पन्द या जड़ जीवन तो समाज को दिशा दे नहीं सकता।

अतः यह कहानी आन्दोलन टूटते मानव मूल्यों, विघटित होते सम्बन्धों और ढ़हती आस्थाओं को नया रूप और नई आस्था प्रदान करने वाला है। इस दृष्टि से यह आन्दोलन अकहानी आन्दोलन के एब्सर्ड दर्शन का विरोध करता है। वह व्यक्तिवादिता का भी विरोध करता है और मनुष्य को उसकी समग्रता में स्वीकार करता है। यह आन्दोलन समाज और व्यक्ति के परस्पर अन्तः वाह्य सबन्धों की पड़ताल संवेदना की बड़ी पैनी दृष्टि से करता है। सचेतन कहानीकार न तो समाज और व्यवस्था में एकरस होकर जीता है, न चारो ओर व्याप्त मूल्यहीनता और विघटन की स्थितियों से अचंभित होता है, न ही परिवेश की भयावहता से आक्रान्त ही होता है। वह विघटन में पुनर्निर्माण के बीज ढूंढता है, इस दृष्टि से वह समाजोन्मुख है। महीप सिंह ने कहा भी है- 'सचेतन कहानी सक्रिय भावबोध की कहानी है। यह जिन्दगी की स्वीकृति की कहानी है। पश्चिम की भौंडी नकल और ओढ़ी हुई मानसिकता से प्रेरित होकर जिन्दगी की व्यर्थता, नितान्त अकेलेपन और बनावटी घुटन का प्रदर्शन नहीं करती। (संदर्भ : साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनैतिक चेतना, पृ0 64)

इन कहानीकारों में महीप सिंह के अतिरिक्त आनन्द प्रकाश जैन, कमल जोशी, कुलभूषण, जगदीश चतुर्वेदी, धर्मेन्द्र गुप्त, प्रियदर्शी प्रकाश, बलराज पंडित, मधुकर सिंह, मनहर चौहान, ममता अग्रवाल (कालिया), योगेश गुप्त, राजकुमार भ्रमर, वेदराही, शकुन्तला शुक्ल, शक्तिपाल केवल, श्याम परमार, सुखवीर, ह्रदयेश, हिमांशु जोशी आदि अनेक नाम हैं और इनकी कहानियाँ 'सचेतन विशेषांक' में छपीं। यद्यपि कमलेश्वर मानते हैं कि 'सचेतन कहानी आन्दोलन कुछ-कुछ वैचारिकता और बहुत कुछ महत्वाकांक्षाओं, अभीप्साओं से भरा था' और इसी प्रकार मधुरेश की भी धारणा है कि 'सर्जनात्मक धरातल पर यह आन्दोलन निहायत दिवालिया साबित हुआ और बहुत से नाम इधर से उधर बटोरने के बावजूद कुछ कदम चलकर वह मुँह के बल गिर पड़ा' लेकिन फिर भी इस कथा आन्दोलन ने 'कहानी को एक बौद्विक दृष्टिकोण प्रदान कर यथार्थ की प्रस्तुति में प्रवृत्त किया। ......नई कहानी के 'प्रामाणिक यथार्थ' 'भोगे हुए यथार्थ' के नारे जो महज नारे बनकर ही रह गए थे और कहानी यथार्थ चित्रण की जिन रूढ़ियों में उलझ कर रह गई थी, सचेतन कहानीकारों की अभिरुचि से फिर जीवन की ओर मुड़ गई। एक विशेष बौद्विक दृष्टिकोण होने के कारण यहाँ कहानीकार में जीवन की समस्याओं से निपटने की

एक तत्परता दिखाई देती है। 'दृष्टि की सचेतनता की प्रतिबद्धता' ने कहानी को एक चिंतनपरक मुद्रा प्रदान की।' (पुष्पपाल सिंह, समकालीन कहानी नया परिप्रेक्ष्य)

वस्तुतः इस कथा आंदोलन में लेखक दो तरह से जुड़े थे। एक तो वह अवसरवादी लेखक जिन्हें आरंभ में किसी खेमे में स्थान न मिला था, अतः जुलूस की तरह इसमें शामिल हो गए और दूसरे वे, जो युगीन चेतना या दृष्टि सम्पन्न प्रतिबद्ध रचनाकार थे। यही कारण है आरंभ में सचेतन आंदोलन का कोई रूप उभरता नहीं दीखता। सचेतन विशेषांकों में सभी तरह की कहानियाँ छपने लगी थीं। 'सार-सार गहि लहै......' जैसे सिद्धान्तों का परिपालन होना चाहिए था, नहीं हो रहा था। समय की गति के साथ प्रथम कोटि के लेखक धीमे-धीमे इस आंदोलन से छिटकते गए और कुछ ही कथाकार इसमें अटूट आस्था बनाए हुए उसके रूप को रचनात्मक और वैचारिक स्तर पर सशक्त बनाते गए। उनके लिए 'सचेतना' का अर्थ था व्यक्ति और उसके परिवेश की समस्त विसंगति, तनाव और जटिलता को पहचानते हुए, भोगते हुए यथार्थ को चित्रित करना, साथ ही यौन संबंधों को उनकी समूची गहनता से उभार कर उन्हें मानवीय पीड़ा तथा बेबसी से भर देना। बेबसी की यह छटपटाहट उसे स्थितप्रज्ञ होने, निर्जीव होने या आरोपित व्यक्तित्व से उबरने में मददगार है। शुद्ध रूप से यौन संबंधों पर आधारित तीन कहानियाँ- महीप सिंह की 'कील', राजकुमार भ्रमर की 'लौ पर रखी हथेली' और आनंदप्रकाश जैन की 'लिपिस्टिक' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त 'दरार', 'विजयी' (वेद राही) 'शटल' (नरेन्द्र कोहली), 'दीवारें और उड़ने वाला घोड़ा' (सुखबीर), 'सीट' (योगेश गुप्त) 'बीस सुबहों के बाद', 'विपरीतीकरण' (मनहर चौहान), 'जड़ता' (कुलदीप बग्गा), 'युद्ध मन' (महीप सिंह), 'आरामगाह' (भ्रमर), आदि अनेक कहानियों को हम सचेतन कहानी आन्दोलन की उपलब्धि मान सकते हैं।

समांतर कहानी

सातवें दशक के अन्त में यह महसूस किया जाने लगा था कि समाज का एक बड़ा वर्ग कहानियों में उपेक्षित हो रहा है, जिसे 'आम आदमी' कहा गया। फलस्वरूप इसी आदमी को केन्द्र में रखकर कहानियाँ लिखी जाने लगीं और इस आंदोलन को 'आम आदमी की कहानी' आन्दोलन या 'समान्तर कहानी आन्दोलन की संज्ञा दी गई। 'समांतर कहानी' में 'आम आदमी' शब्द का प्रयोग संभवतः सर्वहारा शब्द के विरोध में हुआ, क्योंकि आम आदमी सर्वहारा की धारणा का विस्तार करता है। आम आदमी के इस संसार में निम्नमध्यवर्गीय किसान, मजदूर, शिक्षक, चपरासी, किरानी, एवं अन्य पीड़ित लोग सम्मिलित हैं। आजाद भारत में पूंजी के ध्रुवीकरण होते जाने के कारण गरीब और गरीब तथा अमीर और अमीर होते गए। व्यवस्था और व्यवस्थापकों, पूंजीवादियों, सत्ताधारियों द्वारा उपेक्षित यह 'आम जन' समान्तर कहानी के केन्द्र में रहा।

1972 में समांतर (1) के प्रकाशन से समांतर कहानी का आरम्भ माना जाता है। जिसमें कमलेश्वर के साथ कामतानाथ, रमेश उपाध्याय और इब्राहीम शरीफ की महत्वपूर्ण भूमिका थी। अक्टूबर 1974 की सारिका से कमलेश्वर ने समांतर कहानी विशेषांकों का नियमित सिलसिला शुरू किया। उन्होंने समांतर कहानी की विचारधाराओं को 'मेरा पन्ना' स्तम्भ में संकेतित किया। उनके अतिरिक्त ललित मोहन अवस्थी, जितेन्द्र भाटिया, मधुकर सिंह, डॉ0 रामवचन राय आदि सारिका में ही स्वतंत्र लेखों को लिखकर समांतर आंदोलन की सार्थकता को रेखांकित कर रहे थे। युवा कहानीकारों का एक बड़ा वर्ग भी कमलेश्वर के साथ था। इनमें से0रा0 यात्री, राम अरोड़ा, सुधा अरोड़ा, निरुपमा सेवती, मिथिलेश्वर, आशीष सिन्हा, प्रकाश बाथम आदि के साथ प्रौढ़ रचनाकार भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश का समर्थन भी इन्हें प्राप्त था।

यद्यपि अधिकांश पाठक समांतर कहानी को एक ऐसे आंदोलन के रूप में लेते हैं जो कमलेश्वर द्वारा पुनः सुर्खियों में आने, हिन्दी कहानी के केन्द्र में खुद स्थित होने, कुछ मित्रों-परिचितों को जेनुइन कहानीकार के रूप में स्थापित करने की नीयत से, योजनाबद्ध तरीके से, शुरू किया गया था। कई आलोचकों लेखकों ने इसकी तीखी भर्त्सना की जैसे- शैलेश मटियानी नें तो यहाँ तक कहा कि- 'समांतर आंदोलन हिन्दी कहानी के समकालीन दौर का सर्वाधिक हास्यास्पद ही नहीं बल्कि हानिकारक आन्दोलन सिद्ध हुआ है।' इन आलोचनाओं से अविचलित या कहें 'बाखबर रहते हुए भी बेखकर' रहकर समान्तर कहानी आन्दोलन के समर्थकों ने कुछ निश्चित स्थापनाएँ दीं:-

1. समयगत सत्यों और रचना के बीच सामंजस्य ही समांतर कहानी की आधार शिला है।
2. यह आम आदमी के हक में, सबकी पक्षधरता, प्रतिबद्धता और सम्बद्धता को शक तथा संशयरहित रूप में स्थापित करने के पक्ष में है।
3. यह हर उस कथाकार को अस्वीकृत करता है जो समयगत सत्यों से कटा हुआ है।
4. वाम निरन्तर जीवित रहने वाली एक सत्य और अनिवार्य सच्चाई है और उसी से जनसामान्य की विजय सम्भव है।
5. समान्तर लेखक का राजनीति से निकटता का सम्बन्ध है। वह राजनीतिक गतिविधियों को सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य देता है और सांस्कृतिक संघर्ष को राजनीतिक दृष्टि।
6. हर व्यवस्था में शोषण के संदर्भ में लेखक की भूमिका प्रतिपक्ष की ही रहेगी।
7. यह आन्दोलन पीढ़ियों के विभाजन को अस्वीकृत करता है।
8. यहां भाषा का छद्म नहीं है, फार्म का भी कोई आग्रह नहीं है। इस आन्दोलन ने भाषा के स्तर पर भावुकता को त्यागकर उसे स्पष्ट, डायरेक्ट और प्रभावपूर्ण बनाया है।

यह स्थापनाएँ बहुत सूझबूझ और परिश्रम से गढ़ी गईं। अन्य आंदोलनों की तरह इसमें भी पक्ष और प्रतिपक्ष के संवाद-विवाद चलते रहे, फिर भी कई कहानियों जैसे 'निर्वासित' (सूर्यबाला), 'पराई प्यास का सफर' (आलमशाह खान), 'गुंजलक' (हृदयेश), 'अंधेरे का सैलाब' (से0रा0 यात्री), 'गुस्से में आदमी' (जवाहर सिंह), 'जलते हुए डैने' (हिमांशु जोशी), 'अस्तहीन' (सुदीप), 'अंधे कुएं का रास्ता' (अरुण मिश्र), 'अपाहिज' (किशोर माधव) के कारण समांतर कहानी आन्दोलन की चर्चा की जा सकती है।

अन्य कथा आन्दोलन एवं आन्दोलनों की सार्थकता

नई कहानी आंदोलन के पश्चात साठोत्तरी कहानी आंदोलन की स्वीकृति के बावजूद अनेक कथा आन्दोलनों का अस्तित्व बहुत सराहनीय नहीं कहा जा सकता। अकहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी के साथ ही समकालीन कहानी (डॉ0 गंगाप्रसाद विमल), जनवादी कहानी (इजरायल), सक्रिय कहानी (राकेश वत्स) एवं सहज कहानी आन्दोलन (अमृतराय) जैसे आन्दोलन, कहानी जगत में कुकुरमुत्ते की तरह उगे और कई तो क्षणजीवी होकर कालकवलित भी हो गए। लगभग एक ही समय में इतने कथा आन्दोलनों के शुरू होने के क्या कारण थे? क्या कथा जगत में बदलाव की जो स्थितियाँ थीं, वे एक परिभाषा में नहीं अंट पा रही थीं अथवा एक ही समय से जुड़े और समानबोध वाले दो कहानीकार एक धरातल पर स्थिर नहीं हो पा रहे थे? कारण चाहे जो भी हों वस्तुस्थिति यही है कि साठोत्तरी कहानी कई छोटे पड़ावों और मोड़ो से गुजरती हुई आगे बढ़ी और हर मोड़ का एक नए आन्दोलन के रूप में नामकरण हुआ। यह भी सही है कि इन नामकरणों के पीछे परिवर्तन की प्रवृत्ति कम और खेमेबाजी की प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित

होती रही। यद्यपि स्वप्रतिष्ठा आत्ममुग्धता और नेता बनने की कहानीकारों की प्रवृत्ति के बाद भी अनुभव के स्तर पर कथा, शिल्प, संवेदना और भाषा के स्तर पर नई कहानी से पृथक् अपनी पहचान बनाने वाली कई महत्वपूर्ण कहानियों के कारण कहानी जगत में इस युग की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रत्येक आन्दोलन ने कुछ अच्छे हस्ताक्षर दिए। इसलिए प्रभाकर माचवे ने कहीं लिखा है- 'आन्दोलन जीवंतता के लक्षण हैं। मुर्दनी खामोशी से तो कुछ शोरशराबा ही अच्छा।'

16.3 सचेतन कहानी आंदोलन की पृष्ठभूमि और ममता कालिया की कहानियाँ

ममता कालिया ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरूआत कविता से की थी, लेकिन बचपन में सुनी कहानियाँ कैसे उनके मन को कहानी के प्रति संस्कारित करती रहीं, इसका एहसास उन्हें काफी बाद में हुआ। कविता की दुनिया में रचते-बसते कैसे वह कहानी के सम्मोहन से बंधी कहानी की दुनिया में आ गईं, इसका जिक्र उन्होंने अपने आत्मसंस्मरणात्मक गद्य 'कितने शहरों में कितनी बार' में किया है- 'लिखती तो थी मैं कविता पर सारे समय कहानियों से आन्दोलित होती रहती थी। हर कहानी पढ़ने के बाद भी मन में उस कहानी का एक क्रमशः बनता जाता। कविता का खगोल और भूगोल मुझे सीमित दिखता। सातवें दशक की कविता मुझे स्थूल और क्षणवादी लगती हालांकि मैं भी अपने समय के अनुरूप कविताएँ लिख रही थी। जगदीश चतुर्वेदी के सम्पादन में अकवितावादियों का एक महत्वपूर्ण संकलन 'प्रारम्भ' प्रकाशित हुआ जिसमें मेरी इक्कीस कविता छपीं। रातों-रात मेरी गिनती भी अकवियों में होने लगी। सातवें दशक के मध्यान्तर में 'प्रारम्भ' संकलन का प्रकाशन ऐसा माना जा रहा था जैसे सन् 1798 में लिरिकल बैलेड्स का प्रकाशन माना गया था। लेकिन धीरे-धीरे कालान्तर में क्रान्ति का वह कच्चा नक्शा भी फार्मूला बन गया और हम सब इस फार्मूले से बाहर निकल आए।' (तद्भव 14, पृ0 191) मधुरेश ने भी 'प्रारंभ' की तुलना अज्ञेय के तारसप्तक से की थी, पर ममता ने जब कविता की दुनिया से बाहर निकल कर देखा तो संवेदनाओं, अनुभूतियों और आन्दोलनों से सराबोर कहानी जगत उन्हें अपने में स्वीकार कर लेने को उत्सुक दिखा। अपने एक साक्षात्कार में भी ममता ने कहा- 'वह समय कहानी का था। कवियों की नियति नेपथ्य में रहने की थी। 'लहर' के सम्पादक प्रकाश जैन, 'ज्ञानोदय' के सम्पादक शरद देवड़ा उनसे लगातार यह कहते रहते थे कि वह कहानी लिख सकती है। तभी पहली कहानी 'ऊँचे-ऊँचे कँगूरे' ने 1963 में साप्ताहिक हिन्दुस्तान पत्रिका में हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन की कहानी प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पाया और उनका कहानी लेखन शुरू हो गया।'

सातवें दशक में जब ममता ने कहानियाँ लिखना शुरू किया, नई कहानी आन्दोलन पूरी तरह समाप्त हो चुका था। अकहानी, सचेतन कहानी जैसे आन्दोलन अपनी सीमाओं और सम्भावनाओं से जूझ रहे थे। कहानी जगत में हलचल मची हुई थी। कविता में अकवियों की पांत में खड़े होने के बावजूद ममता कहानी में अकहानीकारों का साथ न दे सकीं। यद्यपि अकहानीकारों की प्रथम पंक्ति के लेखकों में रवीन्द्र कालिया का नाम भी आता है जिन्होंने ममता के लिए लिखा था कि 'उनके सम्पर्क में आने के पूर्व ममता कहानियाँ कम बोल्ड किस्म की कविताएँ ज्यादा लिखा करती थीं, फिर भी ममता का नाम अकहानीकारों के साथ न जोड़कर सचेतन कहानीकारों के साथ जोड़ा जाता है। सम्भवतः अकविता की जिस विरूपता, देहीकरण, पराजयबोध, नश्वरता जैसी नकारात्मक प्रवृत्तियों के कारण वे कविता के खेमे से बाहर निकली, अकहानी उससे मुक्त नहीं थी। अतः दूसरा जो कहानी आन्दोलन, कथा जगत को अपनी नई विचार दृष्टि से आन्दोलित कर रहा था- सचेतन कहानी आन्दोलन, ममता नें भी उन्हीं के सुर में सुर मिला दिया। उनका प्रथम कहानी

संग्रह 1967 में 'छुटकारा' के नाम से प्रकाशित हुआ। शीघ्र ही उनका एक और कहानी संकलन 'सीट नंबर छः' प्रकाशित हुआ। उनकी इन आरम्भिक कहानियों पर अनुभव की संकीर्णता की छाप है, पर वे सातवें दशक के सामाजिक पारिवारिक हलचलों की दस्तावेज हैं।

ममता कालिया की सम्पूर्ण कहानियाँ दो खण्डों में है। पहले खण्ड की कहानियों को पढ़कर यह अनुमान लगाना कठिन है कि इनके आगे की कहानियाँ अपने समस्त रचना कौशल और संवेदनाओं के साथ सामने आने वाली हैं। इन कहानियों में मध्य और निम्न मध्य वर्ग की निराशा, पाखण्ड, अन्तर्विरोध और विडम्बनाओं को सूक्ष्म संवेदित दृष्टि से अंकित किया गया है। कहानियों के इस संसार में साधारण लोग हैं, उनके जीवन की साधारण घटनाएँ, साधारण चीजें, स्थितियाँ, ममता इसी साधारणता से असाधारणता का आख्यान रचती हैं। जिसके लिए मधुरेश ने लिखा- 'इनकी कहानियाँ प्रायः ही छोटे-छोटे घटना प्रसंगों की कहानियाँ हैं, जिन्हें कभी चेखव की कहानियों के प्रसंग में 'स्लाइन ऑफ लाइफ' के रूप में पहचाना गया।' (लमही- जुलाई-सित0 2011, पृ0 19) पहले खण्ड की अधिकांश कहानियों में स्त्री पात्र 'मैं' की वाचक भूमिका में है। प्रायः ऐसा लगता है यह 'मैं' वह स्वयं हैं। अपने जीवन के अनुभवों को उन्होंने कहानी की शक्ल दे दी है। यद्यपि इस प्रयास में कहानी का शिल्प कुछ कमजोर हुआ है, लेकिन इनमें मध्यवर्गीय स्त्री अपने सम्पूर्ण अन्तर्द्वन्द्व, अन्तर्विरोधों के साथ उपस्थित हुई है।

इन कहानियों में केवल स्त्रियां ही नहीं हैं पुरुष पात्रों की भी अपनी ज़मीन है। वस्तुतः जैसा कि अखिलेश ने ममता कालिया को लमही पुरस्कार दिए जाने के समय एक व्याख्यान में कहा था- 'वह छोटे-छोटे पात्र जिन्हें बड़ी आँख या मैक्रोविज़न से नहीं देखा जा सकता, वह ममता जी की कहानियों में बड़ी खूबसूरती से आए हैं।' इनकी कहानियाँ शरतचन्दीय भावुकता से मुक्त, ठण्डी बैलौस सी हैं, जो रिश्तों यहाँ तक कि पति-पत्नी के रिश्ते को भी बड़े निस्संग भाव से जीती हैं। 'बड़े दिन की पूर्व सांझ' कहानी हो या 'अपत्नी' कहानी, यह मूल्यों से जुड़े सम्बन्धों के खत्म होने की कहानियाँ हैं। 'वे तीन और वह' कहानी में मध्यवर्गीय शहरी पात्र हैं जो दफ्तरों या बैंकों में काम करते हैं। जीवन की आपाधापी के मध्य रूटीन जिंदगी जीते हुए यह पात्र अधिकतर अविवाहित या विवाहित होते हुए भी अविवाहित की जिन्दगी जीने को अभिशप्त हैं। शायद ऐसी कहानियों से ममता नगरीय जीवन की विडम्बनाओं की ओर संकेत करना चाहती हों। इसी तरह 'बेतरतीब', 'बीमारी', 'छुटकारा', 'साथ' जैसी कहानियों में महानगरीय जीवन बोध की संवेदनशून्य स्थितियों का अंकन हुआ है।

यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि कैसी भी परिस्थितियों में रहते हुए ममता के पात्र कभी जीवन से पलायन के विषय में सोचते भी नहीं, वस्तुतः 'सचेतना' जीवन की चैतन्यता है, जैसा कि महीप सिंह ने कहा- 'चाहे हमें जीवन अच्छा लगे या बुरा लगे, चाहे उसे घूंट-घूंट पीकर हमें तृप्ति प्राप्त हो, चाहे नीम के रस की तरह हमें उसे आखें मूंद कर निगलना पड़े, परन्तु जीवन से हमारी सम्पृक्ति छूटती नहीं......... 'मनुष्य' की प्रकृति जीवन से भागने की नहीं रही है। जीवन की ओर भागना ही उसकी नियति है' (संदर्भ- हिन्दी कहानी संरचना और संवेदना, पृ0 69-78), जिस प्रकार सचेतन कहानीकार अपनी कहानियों में तटस्थता को छोड़कर भीषण असंगतियों के बीच निर्वाह क्षमता (जिजीविषा) उत्पन्न करना चाह रहे थे, उसी प्रकार ममता के लिए भी जीवन का अर्थ है जीवंतता। उनकी कहानियाँ जीवन की असंगत परिस्थितियों से टकराती हैं लेकिन दीनता और पलायन जैसे शब्दों से गुरेज़ करती हैं। विशेषकर वे कहानियाँ, जहाँ केन्द्र में स्त्रियाँ हैं, वे अपने अस्तित्व, निजता और आत्मगौरव को बचाए रखने की कोशिशों में जीवन के संत्रास, प्रेम, उपेक्षा,

उल्लास के साथ ही घर या बाहर पुरुष समाज के प्रपंच और अहंकार से जूझती हैं, संघर्ष करती हैं, पर हार नहीं मानतीं। इसे ममता की स्वयं की विशिष्टता भी कहा जा सकता है।

कहानियों का दूसरा खण्ड परिवर्तित हो रहे समाज में भारतीय जनमानस के व्यवहार, सोच और जीवन पद्धति का समाजशास्त्रीय आंकलन है। इस खण्ड की कहानियों में पूंजी का वर्चस्व, बाजारवादी सोच, खंडित मूल्य, महत्वाकांक्षाए और पूरी न होने पर निराशाएं, कुण्ठाएं, युवाओं की दिशाहीनता, भविष्य की आशंकाएँ जैसे जिन्दगी के जटिल विषयों से टकराहट का स्वर है। 'जांच अभी जारी है', मर्दवादी व्यवस्था से टकराती एक ऐसी विवश स्त्री की कहानी है जिसमें उसे उसकी कमी, अर्थात् स्त्री होने का एहसास इस सीमा तक करवाया जाता है कि उसकी आंतरिक लय ही बदल जाती है। 'सेमिनार', 'एक रंगकर्मी की उदासी', 'आलमारी', 'खिड़की एक दिन अचानक', 'शाल', 'मेला' और 'बोलने वाली औरत' जैसी कहानियाँ दूसरे खण्ड में संकलित हैं।

ममता ने जिस दौर में लिखना शुरू किया था, कहानी पटल पर कई नए पुराने नाम एकसाथ जगमगा रहे थे, ऐसे में अपनी एक अलग पहचान बनाना ममता के लिए कम चुनौती भरा नहीं था। उन्हें सबसे भिन्न शिल्प, कथ्य और भाषा का चयन करना ही था, पर जैसी कि उनकी शख्सियत भी है, वे न सिर्फ कुछ नया करने में सक्षम सिद्ध हुईं बल्कि सफल भी हुईं। उनकी शक्ति है उनकी भाषा, जिसमें एक खास तरह की तुर्शी है, जिसके लिए रवीन्द्र कालिया ने कहा कि 'उसमें एक वाक्य से तन बदन में आग लगाने की क्षमता है।' सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य करने या सवालों के नेज़े उछालने में इस भाषा की अहम भूमिका है।

दोनों खण्डों में संकलित ममता की इन सभी कहानियों में जो विशेषताएँ बार-बार ध्यान आकृष्ट करती हैं, वे हैं- भावना के आवेग का अभाव, बेलौस तरीके से छोटी-छोटी घटनाओं या यथार्थ का चित्रण और गैर रूमानीपन। लेकिन जीवन की इन असंग या असम्पृक्त स्थितियों में भी वे मनुष्य, मनुष्यता और मानवीय भावों की उपेक्षा नहीं करतीं। उनकी कहानियों में जीवनराग की सिम्फनी है वह उसी से धड़कती हैं।

16.4 स्त्री-विमर्श और ममता कालिया

ममता कालिया से पूर्व नई कहानी आन्दोलन के समय मन्नू भण्डारी, ऊषा प्रियम्वदा ने स्त्री विमर्श की ज़मीन तैयार कर दी थी। स्वयं ममता के समय, सातवें-आठवें दशक में महिला कथाकारों की एक पूरी जमात उठ खड़ी हुई जिनमें मणिका मोहिनी, कृष्णा अग्निहोत्री, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, दीप्ति खण्डेलवाल, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, प्रतिमा वर्मा, नमिता सिंह, सुधा अरोड़ा, मृणाल पाण्डे, अरुणा सीतेश आदि उल्लेखनीय नाम हैं। इनमें से अधिकांश के लेखन को 'परिवार के सीमित दायरे में सम्बन्धों और मूल्यों के बदलाव को व्यक्त करने वाला लेखन माना गया है, जिसमें काम सम्बन्धों को खास तौर पर लिया गया है और सामाजिक, राजनैतिक सरोकारों से उदासीनता जताई गई है' (वेद प्रकाश अमिताभ), वहीं ममता की कहानियाँ अनुभूति की कसौटी पर खरी, समय के शिलाखण्ड पर प्रामाणिक दस्तावेज की तरह हमारे सामने आईं। जिनमें जीवन का प्रत्येक आयाम, छोटे-छोटे क्षण सभी उनकी सूक्ष्म अंतर्दृष्टि से संस्पर्शित हुए। ममता व्यापक कैनवास की कथाकार हैं। उनकी कहानियों के संदर्भ में प्रह्लाद अग्रवाल ने लिखा- 'ममता कालिया की स्पष्ट और निर्भीक दृष्टि उनकी बहुत बड़ी शक्ति है। उनकी कहानियों में छिपाव नहीं है। उनमें नारी का पुरुष के समान्तर स्थान बनाने का आस्थापूर्ण प्रयत्न है। ममता ने नारी जीवन के विविध पक्षों को आधुनिक स्थितियों की रोशनी में

सूक्ष्मता से पहचाना है। अतिशय भावुकता उनकी कहानियों में नहीं है, किन्तु उनका बहिष्कार भी नहीं है। भावुकता जीवन का अनिवार्य अंग बनकर सामने आती है इसलिए वह गतिरोध नहीं बनती, प्रवाह पैदा करती है। जीवन के छोटे-छोटे संवेदनात्मक क्षणों को उन्होंने बड़ी खूबसूरती से पकड़ा है।' (संदर्भ-साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना, पृ0 112)

ममता की कहानियाँ दो खण्डों में संकलित हैं। जिनमें से पहला खण्ड स्त्री अभिव्यक्ति का आख्यान सा लगता है। 'मैं' की शैली में लिखी इन कहानियों में मध्यवर्गीय परिवार की ऐसी स्त्रियां हैं, जो घर और बाहर पितृसत्तात्मकता के झूठे प्रपंचों, प्रलोभनों, लोलुपता और दोगलेपन से जूझ रही हैं। वे न सिर्फ अपने अस्तित्व को बचाए रखने की ज़द्दोज़हद में हैं, बल्कि वे समाज की उस मनोग्रन्थि को भी समूल उखाड़ फेंकना चाहती हैं, जहाँ स्त्री के प्रति दोयम दर्जे का भाव केन्द्रीय है। दूसरे खण्ड की कहानियाँ, स्त्रियों की कहानियों के माध्यम से समाज के व्यापक, सरोकारों की कहानियाँ है। इनमें समाज की असंगत स्थितियों के बरक्स ही स्त्रियों की वेदना का रंग गहरा है। इस स्त्री संसार में घरेलू स्त्रियाँ, कामकाजी स्त्रियाँ, युवती से लेकर प्रौढ़ावस्था तक की स्त्रियाँ, प्रायः शिक्षा जगत से जुड़ी-लेक्चरर, शिक्षिका, प्रिंसिपल, लेखिका आदि निम्नवर्गीय परिवारों की भी स्त्रियाँ, सभी सम्मिलित हैं। यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि यद्यपि इनकी कहानियों में स्त्री, 'भारतीय नारी आचार संहिता' जैसा पालन करती नजर नहीं आती, वह सुविधानुसार पश्चिमी दर्शन या मान्यताओं की छूट लेती है, फिर भी वह परिवार से पृथक नहीं होना चाहती, वह परिवार के भीतर ही अपनी निजता अपनी स्पेस, अपनी स्वीकृति चाहती है। 'बातचीत बेकार है', 'मनहूसाबी' या 'मनोविज्ञान' जैसी कहानियाँ इसका सशक्त उदाहरण हैं। इन कहानियों में पति-पत्नी के मध्य संवादहीनता, विवाह के कुछ समय पश्चात् पैदा हुई ऊब और असन्तोष की स्थितियाँ, प्रेम या वात्सल्य जैसे कोमल भावों का अभाव, झगड़ों एवं उपेक्षा-तिरस्कार के मध्य घुटती स्त्रियों का चित्रण है। कुछ समीक्षकों का मानना है कि ममता ने 'अपने ही जीवन के अनुभवों को कच्चे पक्के रूप में कहानियों में डाल दिया है जिससे कहानियों में सन्तुलन की कमी हो गई है' पर इन व्यक्तिगत अनुभवों ने यथार्थ की विश्वसनीयता को बढ़ाया ही है। ममता की कहानियाँ भारतीय नारी की नियति को उसके विभिन्न संदर्भो में देखती और आंकती हैं। जिसमें एक तरफ तो 'सूनी' जैसी कहानी है जिसमें एक अविवाहित किन्तु कामकाजी लड़की की शादी उसकी माँ ही नहीं करना चाहती। इस लड़की का नाम है सुनन्दा जिसे लोग 'सुनी' या 'सूनी' कहते थे, समय बीतने के साथ वह अपना वास्तविक नाम ही भूलने लगी। उसके नाम का सूनापन उसके व्यक्तित्व के साथ ऐसा एकाकार हो गया कि अब उसे सर्वत्र सूना ही दिखाई देने लगा। उसे लगता 'उसके सारे इरादों पर मां एक लाल बत्ती की तरह टिकी हुईं हैं। इनके रहते उनसे मुक्त होना उसके बस की बात नहीं।' दूसरी तरफ विवाहित जीवन की वे कहानियाँ हैं, जहाँ स्त्रियों की नियति परिवार में खपने, खर्च होते जाने में ही है 'बोलने वाली औरत', 'राएवाली', 'सीमा', 'मुहब्बत से खिलाइए' जैसी कहानियों की स्त्रियों की यही विवशताएँ हैं। स्त्री, चाहे पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़, विवाहिता हो या अविवाहिता, पत्नी हो या प्रेयसी, अधिकतर स्थितियों में वह दयनीय ही है। आधुनिकता के तमाम दावों के बावजूद वह अभी भी अपनी श्रृंखलाओं को तोड़ नहीं पाई, न ही उसके प्रति सोच में कोई बदलाव ही आया। पति की असंवेदनशीलता, आक्रामकता एवं अधिकार भावना पत्नी को समकक्ष मानने से ही गुरेज़ करती है 'मनोविज्ञान' कहानी में नवीन और कविता पति-पत्नी हैं। नवीन 'हर हाल में कविता को अपने से एक सीढ़ी नीचे खड़ा देखना चाहता है, जबकि कविता कदम से कदम मिलाकर चलने में यकीन रखती थीं।' लेकिन अन्ततः वह अपने दोस्तों के मध्य कविता को झूठी साबित कर ही देता है, फिर इस एहसास के साथ कि 'उसकी पत्नी पूरी तरह से उसके कब्जे में है' वह सन्तुष्ट हो जाता है।

बद्रीनारायण को दिए एक साक्षात्कार में एक बार ममता कालिया ने कहा था- 'स्त्री और पुरुष मिलकर परिवार बनाते हैं।...... एक घटना स्थिति या संभावना को हर सदस्य अपनी तरह से देखता है। प्रायः ऐसे समय स्त्री की राय को उतना निर्णायक नहीं माना जाता जितना पुरुष की अथवा किसी बुजुर्ग की राय को। ऐसे में घर की स्त्री बहिर्जगत के प्रश्नों को यदि अन्तर्जगत में ले जाती है तो कोई आश्चर्य नहीं।' यही कारण है कि ममता की कहानियाँ ऊपर से बहुत हल्की-फुल्की और रोचक लगते हुए भी गम्भीर अर्थवान हैं। उनमें व्यंग्य की तीखी धार है- 'आपकी छोटी लड़की' परिवार से उपेक्षित एक प्रतिभाशाली लड़की की कहानी है तो 'नई दुनिया' भी एक ऐसी ही लड़की की कहानी है जिसे उसके परिवार वाले हर क्षेत्र में फिसड्डी मानते हैं। 'तस्की को हम न रोएं', 'एक अदद औरत' और 'पीली लड़की' जैसी कहानियाँ ठहरे, हुए सड़ते पानी जैसी छीजती जा रहीं, स्त्रियों की कहानियाँ हैं जहाँ स्त्रियाँ आरम्भ में प्रतिवाद करती हैं, फिर धीरे-धीरे शांत होती जाती हैं। समझौतावादी प्रवृत्ति की ऐसी कहानियाँ कई महिला रचनाकारों ने लिखीं। यहाँ चन्द्रकिरण सौनरेक्सा का नाम लिया जा सकता है। वे प्रायः अपनी कहानियों में समस्या उठाती हैं, उसका सजीव अंकन करती हैं। लेकिन कहानी के अंत में नारी परिस्थितियों से समझौता करती, टूटती, विचलित होती दिखाई जाती है। कहानी पाठक के लिए कुछ मनन बिन्दुओं को उठाकर ही समाप्त हो जाती है। इसका कारण उनके परम्परागत संस्कार या परिस्थितिगत दबाव हो सकते हैं। उनके बाद की पीढ़ी की कथाकार मन्नू भण्डारी की स्त्री आत्मसजग है। वह जीवन को अपने अनुरूप जीना चाहती है लेकिन इस आग्रह के पीछे कहीं भी स्वेच्छाचार नहीं है। वस्तुतः मन्नू वर्तमान नारीवाद की चौहद्दी में आने से ही असहमति जतलाती हैं। वे देहवादी विमर्श भी दूर हैं। उनसे एक कदम आगे ममता नारी मुक्ति को वैचारिक मुक्ति मानती हैं। वह कहती हैं 'किसी भी सवाल पर स्वतंत्र प्रतिक्रिया, हस्तक्षेप और हस्ताक्षर नारी मुक्ति की पहली शर्त है।' इसलिए ममता की वे कहानियाँ जहाँ स्त्रियाँ परिवार से समझौता करती दिखाई पड़ती हैं, वस्तुतः वे प्रतिवाद कर रही होती हैं, हाँ, विरोध की भाषा मौन और असहयोग की होती है।

दाम्पत्य में 'काम' को विशेष महत्व देते हुए ममता ने बहुत सलीके से उसके मर्म तक पहुंचने का प्रयास किया है। वे नारी के लिए कोई आदर्श तय नहीं करतीं और उसकी भौतिक एवं जैविक आवश्यकताओं का समर्थन करती हैं। वे नारी के विचलन को बड़ी साफगोई से अभिव्यक्त करती हैं। 'बड़े दिन की पूर्व सांझ', 'साथ', 'अकेले और अकेले', 'दो जरूरी-चेहरे' जैसी कहानियों में स्त्री मन के विचलन की परिस्थितियाँ हैं। ये आजकल की चालू/फैशननुमा कहानियों की कोटि में नहीं रखी जा सकतीं, जहाँ 'देह' ही सबकुछ है। प्रचलित देह विमर्श के संदर्भ में ममता कहती भी हैं- 'मैं देखती हूँ कि समकालीन लेखन में विशेषकर स्त्री विमर्श में मुक्ति का आशय सिर्फ देह मुक्ति रह गया है। इसके प्रचारक भूल जाते हैं कि वह फार्मूला दमदार होते हुए भी सत्तर साल पुराना हो चुका है। फार्मूले कभी शाश्वत नहीं होते।' (लमही, पृ0 4)

इस दृष्टि से वह अपनी समकालीन कथा लेखिकाओं में अलग ही दिखाई पड़ती हैं, जहाँ सेक्स एक अनिवार्य जरूरत के रूप में उनकी कहानियों में आया है न कि किसी कुण्ठा या मनोविकार के कारण। जीवन की एकरसता से व्यथित, परिवार विशेषकर पति या प्रेमी से उपेक्षित, अवसादग्रस्त, अकेली स्त्रियों के इन स्थितियों से उबरने के एक विकल्प के रूप में सेक्स भी है। 'लगभग प्रेमिका', 'कारण रहित उदासी', 'नितान्त निजी' जैसी कहानियों को इस परिपेक्ष्य में देखा जा सकता है। ममता की कहानियों में विषयगत इकहरापन नहीं है। 'थियेटर रोड के कव्वे' और 'तोहमत' जैसी कहानियों के माध्यम से

उन्होंने यौन शुचिता के आतंकवाली इस मर्दवादी सामाजिक संरचना की विसंगतियों को दिखाया है, वही 'गुस्सा', 'फर्क नहीं', 'जिन्दगी सात घण्टे बाद की', 'उपलब्धि', 'जितना तुम्हारा हूँ', 'काली साड़ी', 'बातचीत बेकार है', जैसी कहानियों में नगरीय मध्यवर्गीय जीवन में फंसती-पिसती स्त्रियों को अभिव्यक्ति मिली है। छीजते जा रहे रिश्तों की कहानियाँ हैं- 'बीमारी', 'माँ', 'बिटिया', 'प्यार के बाद' आदि।

ममता की कहानियों पर यह आक्षेप लगते हैं कि उनमें 'संवेदना का कोई नुकीला क्षण नहीं मिलता, केवल स्थितियों की विडम्बना का एहसास होता है' या वे कहानियाँ अक्सर 'बहुत ठण्डी किस्म की होती हैं उनमें भावना का आवेग नहीं होता' पर इसी को उनकी विशेषता भी कहा जा सकता है कि वे बेहद निस्संगता से घटनाओं को उठाती हैं, यथार्थ अंकन करती हैं और पाठक को यूं ही आन्दोलित छोड़ देती हैं। 'स्त्री और समाज के पक्ष' की अन्तर्दृष्टि से गुंफित उनकी कहानियाँ प्रायः आकार में लघु हैं, लेकिन उनमें अन्तर्निहित अर्थवत्ता कहानी के बार-बार पाठ की मांग करती हैं। बेहद चुटीली कसी हुई और जीवन्त भाषा ममता की विशेषता है। सामाजिक विसंगतियों के वर्णन के समय यह भाषा अत्यन्त पैनी या तुर्शीदार हो जाती हैं। यह अकारण नहीं कि हरिशंकर परसाई ममता के प्रिय रचनाकारों में से हैं। कविता के प्रति विशेष लगाव होते हुए भी ममता कहानियों में काव्य के प्रयोग की हिमायती नहीं हैं। विषम यथार्थ के वर्णन के लिए ममता में भाषा के प्रति अतिरिक्त सजगता देखी जा सकी है। वे शुरू से ही भाषा के नपे तुले और सार्थक प्रयोग का परिचय देती हैं। 'सीमा' कहानी के संवाद उनकी व्यंजनामय भाषा का अद्वितीय नमूना है-

''हमें एक नौकर चाहिए।'' (पति)

''वह तो है'' (पत्नी)

''तुम रोज-रोज मेरा ब्लडप्रेशर बढ़ा देती हो। आखिर मैं कितनी गोलियां रोज खा सकता हूँ।'' (पति)

''तुम रोज मेरा ब्लडप्रेशर इतना गिरा देते हो कि मैं एक भी गोली नहीं खा सकती।'' (पत्नी)

ममता की कहानियों में किस्सा गोई नहीं है, लेकिन जहाँ अव्यक्त है कहानी उन्हीं के मध्य है। कहानियों में किसी प्रकार की जटिलता या उलझाव नहीं है। अतः वे 'कथा रस' से भरपूर हैं इसीलिए रवीन्द्र कालिया को कहना पड़ता है- 'ममता की कहानियों के पाठक बहुत हैं और लोकप्रियता के मामले में ममता मुझसे कहीं आगे हैं' (ममता कालिया की कहानियाँ, भाग-1)

16.5 'बोलने वाली औरत' : पाठ-बोध और प्रक्रिया

ममता कालिया की कहानी 'बोलने वाली औरत' मध्यवर्गीय परिवार की एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो परिवार के अन्य सदस्यों, जिसमें उसकी सास हैं- बीजी, पति कपिल एवं बच्चे (प्रकट रूप में), और श्वसुर (अप्रकटरूप में), इन सभी के साथ बोलती रहती है, यह कहें बहस करती रहती है या कि कहानी से ही शब्द उधार लें तो 'खड़ी-खड़ी जवाब टिकाती रहती है।' उसका यह बोलना किसी को भी अच्छा नहीं लगता। इसीलिए उस पर हमेशा बद्तमीज़ और बद्जुबान होने की तोहमत लगती रहती है। वह कई बार यह निश्चय करती है कि अब किसी भी परिस्थिति में वह कुछ भी नहीं बोलेगी, लेकिन हर बार कोई न कोई घटना या प्रसंग ऐसा हो जाता है कि वह बोल पड़ती है। कहानी में

ऐसी कई घटनाएं हैं, चाहे वह झाड़ू सीधी रखने की घटना हो, चाय पीने की या कहीं घूम आने की, यह घटनाएँ गौण हैं, इनका महत्व इतना ही है कि हर घटना की प्रतिक्रिया में वह बोल उठती है और जिसका अन्त उसे चुप रहने की हिदायत के साथ होता है।

लेकिन वह महज बोलने के लिए नहीं बोलती। वह मात्र बोल नहीं रही है वह प्रतिवाद कर रही है अंधविश्वासों और रूढ़ियों से जकड़ी उस मर्दवादी सामाजिक संरचना का, जिसमें पुरुष के साथ स्त्रियां भी स्त्रियों की शोषक हैं। वह लड़ रही है अपने आत्मगौरव, अपने आत्म सम्मान की रक्षा के लिए और इस लड़ाई में उसका हथियार हैं शब्द।

वह स्त्री है शिखा, पूरा नाम दीपशिखा, लेकिन वह खुद को अग्नि शिखा कहे जाने ज्यादा पसंद करती है, कहती है 'माता-पिता ने मेरा नाम गलत रखा है, मैं दीपशिखा नहीं; अग्निशिखा हूँ।' (बोलने वाली औरत, 'ममता कालिया की कहानियाँ', खण्ड-2, पृ0 126) उसके व्यक्तित्व की जो यह छोटी सी झलक ममता कालिया ने दी, यह उसके भीतर उबल रहे लावे या पनप रहे आक्रोश की ओर हमारा ध्यान खींचती है और यह आक्रोश है समाज के दोगलेपन के कारण, उसके विरोध में। यह विडम्बना ही तो है अपने जिन गुणों के कारण शिखा का विवाह के लिए चयन हुआ, वह इस परिवार का हिस्सा बनी, कहानी में है कि जब शादी के विचार से कपिल ने अपने आसपास देखा तो उसे कॉलेज में अपने से दो साल छोटी बी.एससी. में पढ़ने वाली शिखा पसंद आई क्योंकि वह उन स्त्रियों जैसी नहीं थी जिन्हें कपिल अपने परिवार में या अपने आस पास देखता था। शिखा की वक्तृता से प्रभावित होकर वह सोचता है वह शिखा को पाकर रहेगा और पा भी लेता है। शिखा भी कपिल की मौलिक सोच और आत्मनिर्भरता से प्रभावित है लेकिन यह आदर्श स्थितियां शादी के बाद भी इतनी ही आदर्श नहीं रह जातीं। शिखा के उन्हीं गुणों के कारण उसे बार-बार अपमानित होना पड़ता है। कहानी के क्लाइमेक्स में उसका अपना ही बेटा उसके मुंह पर एक घूंसा मारता है। शिखा के होठ सूज जाते हैं, जबड़ा जाम हो जाता है और वह कुछ भी बोलने में असमर्थ हो जाती है। यह त्रासद है कि घूंसा उसकी सास नहीं मारती, पति नहीं मारता, बेटा मारता है जो अब उस परिवार में शक्ति का केन्द्र बनने जा रहा है और कैसे ममता कालिया ने इस घूंसे के जरिए सत्ता का हस्तांतरण दिखाया है। यहां हम देखते हैं कि परिवार में शक्ति का एक नया ध्रुवीकरण हो रहा है। अब शक्ति का जो केन्द्र है वह उसका बेटा है और वर्तमान पीढ़ी अपनी भावी पीढ़ी को सत्ता का हस्तांतरण कर रही है। वस्तुतः तीनों ही पीढ़ियाँ बीजी, पति और बेटा यह एक स्त्री की सोच, उसकी चेतना और अभिव्यक्ति को रोकने के लिए कृतसंकल्प हैं।

लेकिन यहीं पर कहानी स्त्री विमर्श के नाम पर अन्य कहानियों से भिन्न दिखाई देती है। जहाँ स्त्री विमर्श की कई अन्य कहानियों में स्त्रियाँ अपने अधिकार के लिए आवाज बुलन्द करती हैं, व्यवस्था से संघर्ष करती हैं पर धीरे-धीरे इस व्यवस्था का अंग बन जाती हैं, अपनी स्थितियों से समझौता कर लेती हैं और नियति को स्वीकार कर लेती हैं। कहानी के अन्त में होठ सूज जाने के कारण शिखा बोल नहीं सकती, पर भाव उसके भीतर कसमसाते रहते हैं, शब्द बाहर निकलने के लिए छटपटाते रहते हैं। शिखा को लगता है कि उसकी मृत्यु के बाद ये शब्द उसके शरीर के हर रन्ध्र से बाहर निकल भागेंगे और हस्तक्षेप की जीती जागती इबारत बन जायेंगे। वस्तुत शिखा व्यवस्था का अंग बनकर तथाकथित सुखी जीवन जीने की सुविधा नकार देती है। वह अचम्भित है कि अधिकांश विवाहित स्त्रियों को इस बात का इल्म ही नहीं कि कब और कैसे वह इन्सान से मशीन में कायांतरित हो गईं जहाँ उनके श्रम की तो अहमियत है लेकिन सोचने विचारने या व्यक्त करने की आजादी नहीं। इसी बिन्दु पर हॉलीवुड की फिल्म ''मैट्रिक्स'' को भी

स्मरण कर लेना तर्कसंगत होगा, जिसमें सभी इन्सानों को रोबोट या मशीन में बदल दिया जाता है और जिनकी सोचने समझने की शक्ति पर किसी और का नियंत्रण होता है। शिखा के लिए भी बीजी कपिल से कहती है 'तू फिकर मत कर, थोड़े दिनों में मैं इसे ऐन पटरी पर ले आऊँगी' (वही, पृ0 129) लेकिन ऐसा हो नहीं पाता। उसकी चेतना जीवित है। वह दरख्त नहीं बनना चाहती और शायद स्त्री विमर्श का केन्द्रीय तत्व भी यही है चेतना और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता। वह चाहती है जिस मौलिक सोच विचार के कारण कपिल और शिखा ने एक दूसरे को पसंद किया था, विवाह के पश्चात् अब उस मौलिक सोच के लिए केवल कपिल ही स्वतंत्र न रहे। एक दूसरे की निज़ता को पर्याप्त स्पेस देते हुए एक संयुक्त प्रयास से गृहस्थी की गाड़ी खींचने का जो फलसफा ममता कालिया का है, शिखा उसी की मांग करती है। इसीलिए स्त्री विमर्श के दायरे में रखे जाने पर भी यह कहानी आजकल के फैशननुमा और फार्मूलेनुमा कहानियों से, जिनमें देह की आजादी ही सब कुछ है, एकदम अलग है। यह एक स्त्री के मन को छीजते जा रहे आवेग, उसकी अभिव्यक्ति और सृजन की व्याकुलता का बयान है।

इस कहानी में एक और पक्ष की ओर बड़ी बारीकी से ममता कालिया संकेत करती हैं, वह है रूटीन। आज की इस आपाधापी भरे व्यस्त जीवन के कारण कैसे रिश्तों में खटास आ रही है, कैसे रिश्तों की ऊष्मता, सहजता, आत्मीयता इस मशीनी जीवन शैली की भेंट चढ़ते जा रहे हैं, कहानी इस ओर भी संकेत करती है। कपिल चाहता है कि शिखा एक सुघड़ पत्नी की तरह घर की समस्त जिम्मेदारियों को अपने ऊपर ओढ़ ले और उसे स्वतंत्र छोड़ दें, पर शिखा भी अपने लिए थोड़े से समय की मांग करती है, जिस समय में वह स्वयं हो, उसके सपने हों और उसकी अभिव्यक्तियाँ। जब परिवार के सब लोग सो जाते हैं शिखा हाथमुंह धोकर कपड़े बदल कर एक बार फिर 'अपना दिन' शुरू करने की कोशिश करती है। उसके इस अपने दिन में किताब है, कागज है, कलम है। वह थोड़ा सा समय चुराती है, लेकिन अपने लिए अपने ढंग से जिए हुए इन पलों के कारण वह अगले दिन की दिनचर्या के लिए पिछड़ जाती है और लांछनों और तोहमतों के दौर शुरू हो जाते हैं। शिखा को लगता है उसे ठोंक पीटकर मशीन बनाया जा रहा है और एक बार फिर वह मशीन बनने से इंकार कर देती हैं।

यह कहानी इसी दृष्टि से विशिष्ट है। परिवार में खपने और खर्च हो जाने की स्थिति में भी शिखा में अंतर्विरोधों और असहज स्थितियों से जूझने की दृढ़ता है। उसके लिए जीवन का अर्थ है जीवंतता और जीवंतता का अर्थ है विरोध, सतत विरोध, इसलिए न बोल सकने की स्थिति में भी वह सोचती है कि मुंह बंद रखना चुप रहने की शर्त नहीं है। यह कहानी स्त्री विमर्श के इकहरेपन को भी तोड़ती है। सीमित पात्रों और परिमाण में अत्यन्त लघु होने के बाद भी इसकी अनुगूंज बहुत गहरी और टीसने वाली है।

'बोलने वाली औरत' शीर्षक की सार्थकताः

स्त्रियों के सन्दर्भ में समाज दोहरी भूमिका में सामने आता है। स्त्रियों के कर्तव्य बताते हुए या उनसे अपेक्षाओं की चर्चा करते हुए वह एक कठोर अनुशासनप्रिय (तथाकथित) न्यायी की भूमिका में रहता है। लेकिन जब स्त्रियों की निज़ता, उनकी अस्मिता या अधिकार के प्रश्न सर उठाते हैं तो समाज न सिर्फ अंधा बल्कि गूंगा और बहरा भी हो जाता है। ऐसे समाज में 'बोलना' एक अनिवार्य आवश्यकता है। वह स्त्री जिसकी आवाज़ को दबा लेने के लिए परिवार और समाज सभी कृतसंकल्प हैं, पर वह बोलती है- महज़ बोलने के लिए नहीं। वह बोल रही है अपने 'स्वत्व की पहचान' के लिए। वह बोल रही है- पुरुषवादी समाज व्यवस्था में स्त्री के स्वप्नों, आकांक्षाओं और अधिकार की मांग के

लिए। वह बोल रही है- परम्परा से चली आ रही, धैर्या, सहनशील, शांत और चुप, स्त्री की आदर्श छवि खण्डित करने के लिए, जिससे व्यवस्था के प्रति उसके आक्रोश को सब जानें। फिर शायद, कोई एक दिन ऐसा आए, जब स्त्रियों को बिना बोले (मांगे) एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व की पहचान प्राप्त हो सके। इस दृष्टि से शीर्षक सार्थक है।

16.6 सारांश

'बोलने वाली औरत' ममता कालिया की एक महत्वपूर्ण कहानी है जो उनकी जीवन दृष्टि कि 'मुक्ति का सबसे अच्छा विस्तार वैचारिक मुक्ति है' का प्रतिनिधित्व करती है। आठवें दशक में अनेक महिला लेखिकाएँ एक साथ कथा परिदृश्य पर सक्रिय थीं, जबकि उसके पहले के स्त्री लेखन के सन्दर्भ में स्वयं ममता ने लिखा- 'सातवें दशक में स्त्री वर्ग के लिए लेखन कोई प्रदर्शनीय कला नहीं थी। कहानी कविताएँ लिखकर आलमारी में साड़ियों की तहों में छुपा कर रख ली जातीं और कभी धीरे से किसी पत्रिका में सम्पादक के नाम बुक पोस्ट कर दी जातीं। इससे अधिक लोकोन्मुखता अपचर्चा का बायस बनती।. ...... लेकिन यह एक यथास्थिति थी जिसे उलांकने की तड़प मेरे मन में रही होगी' और व्यवस्था से विद्रोह की यही तड़प उनकी कथा नायिकाओं में भी देखी जा सकती है। लेकिन यहाँ महत्वपूर्ण है कि स्त्रियों के पक्ष में लगातार लिखते हुए भी वह न तो 'नारीवाद' जैसे किसी लेबुल से जुड़ना चाहती हैं और न ही 'महिला लेखन' जैसे फ्रेम में सीमित होना चाहती हैं। वे मानती हैं 'सृजन के संसार में आरक्षण की मांग बिल्कुल नहीं चलती।' इसी प्रकार वह स्त्री पुरुष सम्बन्धों को पर्याप्त महत्व देते हुए भी उसी को कहानी का सर्वस्व मानने से इंकार करती हैं। स्त्री को केन्द्र में रखकर उसके बहाने मध्यवर्ग की जटिल सामाजिक संरचना की शल्यक्रिया, उसकी सीमाओं की पड़ताल उनकी कहानियों में देखी जा सकती है।

इतिहास के पन्नों में सातवां दशक अनेक घटनाओं के कारण महत्वपूर्ण है- भारत चीन युद्ध, नक्सलवादियों की बढ़ती सक्रियता, मुद्रा स्फीति, मुद्रा अवमूल्यन, भयंकर अकाल एवं सूखा, शिक्षितों की बढ़ती बेरोजगारी, अनिश्चितता, अविश्वसनीयता, अनास्था जैसी प्रवृत्तियों के प्रसार के साथ ही कथा जगत में आन्दोलनों की भरमार। इसी समय बाजारवाद भी आहिस्ता से भारतीय परिवेश में प्रविष्ट होने लगा था। हर वस्तु को उसकी उपयोगिता और उसके मूल्य के सापेक्ष जांचा परखा जाने लगा था। वस्तुओं की उस सूची में स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं। यद्यपि सातवें दशक में आधुनिक मध्यवर्गीय परिवारों में लड़कियों की स्थिति में बहुत परिवर्तन आ गया था। वे शिक्षित होने लगी थीं, कमाने लगी थीं, शहरों में अकेले रहने लगी थीं, अपनी मर्जी से विवाह भी करने लगी थीं। नई उभरती और अपना वजूद तलाशती इस नई स्त्री को अब घर और बाहर दोनो मोर्चों पर एक साथ संघर्ष करना पड़ रहा था क्योंकि स्त्री के प्रति समाज के नजरिए में कोई परिवर्तन नहीं आया था। वह स्त्री को अभी भी उसी 'उपभोगवादी दृष्टि' से तौल रहा था जिसमें स्त्री की उपयोगिता उसके श्रम से आंकी जाती है। ऐसी ही शिक्षित संघर्षरत स्त्रियाँ ममता की कहानियों के केन्द्र में रहीं। 'बोलने वाली औरत' ऐसी कहानियों की प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है।

16.7 अभ्यास

1. साठोत्तरी कहानी आंदोलन की पृष्ठभूमि में ममता कालिया की कहानियों की उदाहरण सहित समीक्षा कीजिए।

2. अकहानी और सचेतन कहानी आन्दोलनों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए रेखांकित करें कि ममता कालिया किस कहानी आन्दोलन से जुड़ाव महसूस करती थीं और क्यों?
3. 'बोलने वाली औरत' कहानी की दीपशिखा आम मध्यवर्गीय परिवारों की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस कथन को स्पष्ट करें।
4. 'मेरे लिए स्त्री मुक्ति का अर्थ है- 'स्वतंत्र प्रतिक्रिया, हस्तक्षेप और हस्ताक्षर' ममता कालिया के इस कथन के आलोक में उनके स्त्री विमर्श सम्बन्धी मान्यताओं की विवेचना उनकी कहानियों के संदर्भ से करें।
5. 'फिलहाल उसका मुँह सूजा हुआ है, पर मुंह बंद रखना चुप रहने की शर्त नहीं है' इस कथन के परिप्रेक्ष्य में 'बोलने वाली औरत' कहानी की समीक्षा कीजिए।

16.8 खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

नई कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, (सम्पादक) डॉ0 देवीशंकर अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

कहानी नयी कहानी : नामवर सिंह, लोक भारती, प्रकाशन, इलाहाबाद।

एक दुनिया : समानान्तर , राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली।

नयी कहानी की भूमिका , कमलेश्वर, अक्षर प्रकाशन दिल्ली।

हिन्दी कहानी का विकास , मधुरेश, नई कहानी, अलोपीबाग, इलाहाबाद।

कहनी उपखान, काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

कहानी : नयी कहानी, नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

हिन्दी कहानी का विकास, मधुरेश, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद।

हिन्दी कहानी : समीक्षा और संदर्भ, विवेकी राय, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद।

हिन्दी कहानी का इतिहास खण्ड-2, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

साठोत्तर हिन्दी कहानी, के. एम. मालती, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

तद्भव (अंक 11-18) सं., अखिलेश, लखनऊ।

लमही (जुलाई-सितम्बर अंक, 2011) सं. विजय राय, लखनऊ।

हिंदी कहानी : अस्मिता की तलाश, मधुरेश, आधार प्रकाशन, पंचकूला।

जरा सी रोशनी- रवीन्द्र कालिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।